मानव मन्दिर

फकीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट
सुतेहरी रोड, होशियारपुर
द्वारा अमूल्य भेंट

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of Publication	Monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir. Hoshiarpur
Editor's Neme	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir of partners of shareholders, holding more than one Percent of the total capital	- Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : Signature of Publisher

Printed and Published by : Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir Hoshirapur, for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर की अपना मासिक सत्संग

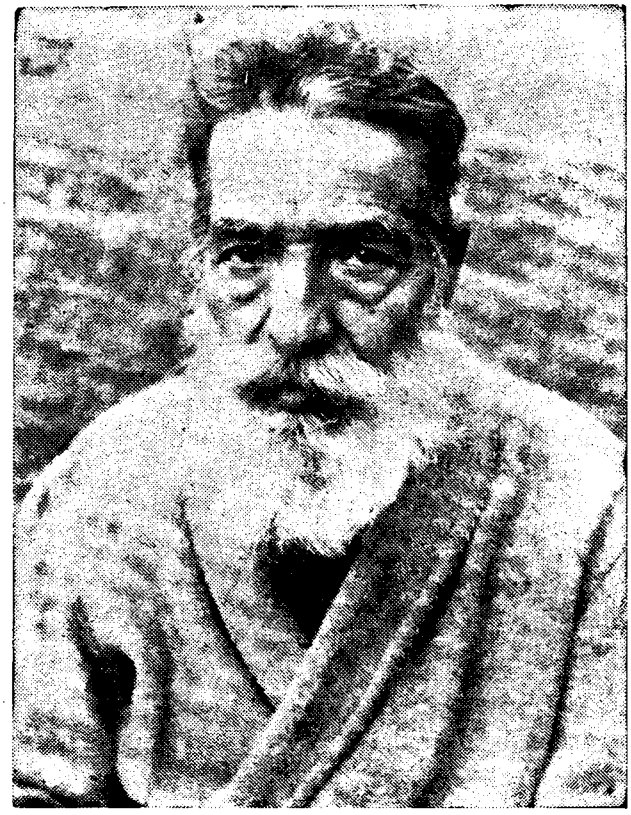

Param Sant Param Dayal Faqir Chand ji Maharaj

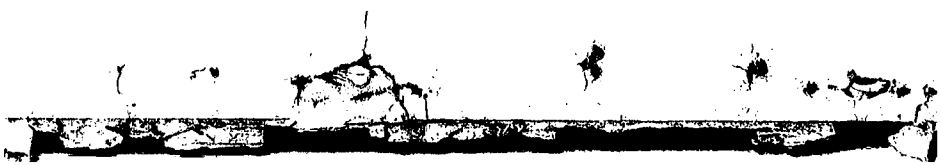

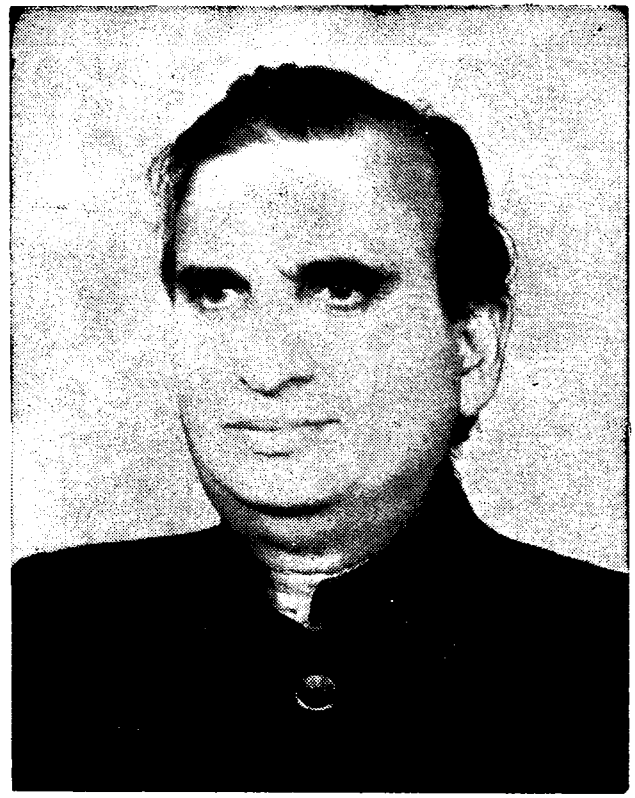

Param Sant Manav Dayal Dr. I, C. Sharma ji Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र

BE MAN
मनुष्य बनो

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 14	सोमवार 11 मई 1987	संख्या 1

सत्संग हजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज

राधास्वामी धाम 2-8-1930

शब्द की तशरीह (व्याख्या)

(1) देखो गगन के बीच श्याम कुंज खिल रहा।
भँवरा गया लुभाय गगन में चढ़ के मिल रहा ।।
(वचन 22 शब्द 7 राधास्वामी सारवचन नज़्म)

अर्थ—देखो आसमान के दर्म्यान श्याम कुंज की क्यारी कैसे खिली हुई मालूम होती है। उसकी दिल-फरेबी (खुशी) को देखकर दिल का भँवरा मस्त हो गया और उसी दृश्य में मिलकर उसी का हो रहा।

(2) धोखे का मकाम उसे देखता रहा।
वह सिद्ध नाथ योगी उन्हें पस्ता रहा ।।

अर्थ—यह स्थान धोखे का है। यहाँ पाँच तत्त्वों की कारीगरी के देखने में दिल हैरान हो गया और सोच में पड़ गया। और इसी एक पर क्या विशेषता है। बहुत से सिद्ध (कामिल), नाथ (स्वामी), संन्यासी, योगी (साहिब करामात ताक़त वाले रियाज़तकश) इन्हीं मज़ारों के शैदाई होकर इन्हीं के हो रहे।

(3) काल अपना जाल एक जुदा ही बिछा रहा।
जो जो गये वहाँ उन्हें उल्टा रहा॥

अर्थ—यह त्रिलोकी की रचना काल की कारीगरी है। इस काल ने अपना अलग ही जाल बिछा रखा है और जो-जो लोग इस काल की रचना की हद तक पहुँचे उसके आगे न बढ़ सके। काल ने इनको बार-बार वापिसी और बादगश्त उल्टे जाने के लिए मजबूर किया।

(4) नाना कला दिखाये वहीं मोहता रहा।
सबकी कमाई आप खड़ा खोसता रहा॥

अर्थ—काल की कला (कारीगरी) अजीबो-गरीब है। उसकी नारंगियाँ तिलिस्म (जादू) की तरह आँखों को भरमाने वाली साबित होती हैं। जिन-जिन लोगों ने इसकी सनत के कमाल को देखा धोखे में आ गये। फरेब खा गये। और वो भी फँस गये और वह सब की कमाई आप खड़ा होकर हड़पता रहा।

(5) क्या क्या कहूँ अनर्थ बहुत भाँति करता रहा।
बिन सन्त सतगुरु वो सभी को निगल रहा॥

अर्थ—क्या-क्या कहूँ इसके बुरे कामों की कहानी लम्बी है। हजारों छल और कपट की कारस्तानियों का जाल बिछा हुआ है। जिनको सन्त सद्गुरु नहीं प्राप्त हुए उनको वह यूँ ही बराबर निगलता रहा।

(6) आगे न कोई जाये इसी में भूला रहा।
माया का झूला डाल मन को झुला रहा॥

अर्थ—आगे बढ़ने की किसी की जुर्रत नहीं हुई। सब उसी खराबी फरेब में आ गये। और वह माया का झूला डालकर अकल इन्सानी तक को झुलाता रहता है।

(7) द्वारे के पार का होकर जाने न दे रहा।
फिर भेद वहाँ के पार का सब ही ढका रहा॥

अर्थ—काल की यह कोशिश और ख्वाहिश है कि एक भी प्राणी को दसवें दरवाज़े के पार जाने का मौका न दिया जाये। (सब नीचे भरम और मोह के खन्दक में ढकेल दिये जायें।) इसलिए यह ज़रूरी बात थी कि उसके पार के भेद से किसी को जानकारी न होने पाये। और वो राज़ सरब-सतह (पोशीदा) की तरह ढके का ढका रहा।

(8) क्या शेष क्या महेश सभी हार कर रहा।
बिन सन्त उसके पार कोई भी न जा रहा॥

अर्थ—शेष और महेश (यानि तहत अलसरा से लेकर फलकुल अफलाक तक की ताक़तें) सबके सब हार मानकर थक गये। सिर्फ एक सन्तों ही का यह कमाल है कि उसके पार जाने में कामयाब हुए। इनके सिवा और कोई भी नहीं गया।

(9) सो भेद राधास्वामी जी को सुना रहा।
जिस पर है मेहर उनकी वो परतीत ला रहा॥

अर्थ—वो भेद सतपुरुष राधास्वामी दयाल (अपनी दया से) सबको सुना रहे हैं। लेकिन एतवार (विश्वास) उन्हीं को होगा जिन पर उनकी मेहरबानी है।

मुक्तसर और पुरमायनी तशरीह

काल ब्रह्मा को कहते हैं। ब्रह्मा ही काल है। ब्रह्मा दो संस्कृत शब्द बृह (बढ़ने) और मनन (सोचने) से निकला है। ब्रह्मा नुक्स है कमाल नहीं है। बढ़ने और सोचने की सिफ्त ज़ाहिर कर रही है कि ब्रह्मा किसी हालत में पूर्ण नहीं है। इस ब्रह्मा के समझने में बराबर गलतियों पर ग़लतियाँ होती चली आ रही हैं। बहुत कम लोग ऐसे हैं जो इस शब्द के लगवी (झूठे) और हकीकी (सच्चे) मुराद पर कभी ग़ौर करने का ख्याल करते हैं। बढ़ने और सोचने

के तकल्लुफ का सम्बन्ध सिर्फ उस शख्सियत के साथ मन्सूब (मिला) रहता है। जिसमें कमी और नुक्स का ऐब रहता है। यह बात हम काल या ब्रह्मा में खुली हुई आँखों से देख रहे हैं। इसकी रचना में हर शै (चीज़) जल्दी-जल्दी बदलती रहती है। किसी एक को भी कयाम (ठहराव) और तसल्ली नहीं है। काल (वक्त) को सुकून (शान्ति) और राहत (आराम) से क्या सम्बन्ध है। हाँ, एक बात ज़रूर है जिस तरह थियेटर के पर्दे पै-दर-पै गिर कर खास किस्म के दिल को लुभाने वाले नज़ारे दिखा देते हैं उसी तरह काल भगवान् भी एक लम्हा के बाद दूसरा मंज़र पेश कर देते हैं और ये मंज़र कुछ ऐसे दिलफरेब, दिलचस्प और दिलपसन्द होते हैं कि जो देखता है वही हैरान रह जाता है और जज़्बे में आकर कह उठता है :—

दरिया देखूं कि सैर दरिया देखूं,
या मोरन को बदश्त व सहरा देखूं।
हर सूं तेरी कुदरत के हैं लाखों जलवे,
हैरान हूँ कि दो आँखों से क्या क्या देखूं।

आरिफ-कामिल ज्ञानी-ध्यानी आकल-आलम जिसकी निगाह पड़ती है उसी पर जादू का असर हो जाता है। अक्ल अपनी चौकड़ी भूल जाती है और काल की तिलस्मी कारीगरी के धोखे में इसी तरह आ जाती है जिस तरह मारवाड़ की ज़मीन में व मृगतृष्णा के जल के धोखे में प्यासे हिरण सुराव आकर अपनी जान दे देते हैं। यहाँ तक देखा जा रहा है काल सब पर अपना हिप्नोटिक असर (मोहिनी मन्त्र) डालकर सबको बुरी तरह से ज़िबह (कत्ल) कर रहा है और सबके सब उसी तरह ज़िबह किये जाने के लिए तैयार हैं जिस तरह रेबड़ का अकेला बकरा खरमस्तियाँ करता फिरता है। ज्ञानी ज्ञान के दर्जे तक पहुँचे, ब्रह्मा तक

रिसाई (पहुँच) हासिल की, इसके पहचानने की कोशिश में उम्र ज़ाया की और मिला क्या ? कुछ भी नहीं योगी सिद्धि शक्ति का भूखा। मुअज़दह और करामात का शैदाई तरह-तरह की मेहनत और मशक्कत से काम लेता रहा। मायादी सिद्धि और शक्ति ये सब हालतें दसवें द्वार के नीचे-नीचे रहती हैं। ये सब दसवें द्वार तक पहुँच कर बार-बार लौटाये जाते हैं। अगर गुरु हाथ आ जाये तो समझना चाहिए किस्मत का सितारा चमक उठा। क्योंकि मनफरत और नजात (छुटकारा) सिर्फ इन्हीं के हिस्से की चीज़ है जिन पर गुरु की मेहरबानी है।

वरना यहाँ काल हज़ारों सूरत में सबको खा रहा है। कीड़ा कीड़े को खा रहा है। कीड़े को बड़ा कीड़ा खा रहा है। उसे कोई और ही खा रहा है। बकरी घास खाती है और बकरी को इन्सान और दरिन्दे खा जाते हैं। एक ख्याल दूसरे को खाता है। एक मौसम दूसरे को खा जाता है। एक साल दूसरे साल को खा जाता है। ये तमाम युग-युगान्तर और कल्प-कल्पान्तर क्या हैं ? काल के खाने की तमाशगिरी हैं और ये सब के सब इसी तरह काल की खुराक बने हुए हैं।

काल की सल्तनत भी अजीबो-गरीब है। तमाम जीव-जन्तु सारी मखलूकात (दुनिया) इसके क़ानून की मताज़त (अधीनता) में कमाल कर रही है और वो सब की कमाई के बेहतरीन हिस्से को हर वक्त हड़पता रहता है। काल यह चाहता है कि सब काम में लगे रहें। किसी को सोचने-समझने का मौका न मिले। किसी के दिमाग़ के अन्दर आज़ादी का ख्याल न आने पाये ताकि कोई उसकी सल्तनत से बाहर निकलने का हौसला न करे। ये श्रुति और स्मृति आदि क्या हैं ? इस काल के कानून हैं। और ये कर्म, धर्म

क्या हैं ? योग की कमाई करने के तरीक़े हैं। जिस तरह दुनियावी मालिक या बादशाह सब से कमाई कराता हुआ टैक्स लेता है और उसी टैक्स पर उसकी सल्तनत का दारोमदार है। बिलकुल उसी तरह यह काल सबको अपने क़ानून में फँसाये हुए धर्म, कर्म कराता है और उसका बेहतरीन हिस्सा खुद हड़प जाता है। उसकी नकल तुम इस दुनिया के हर कारोबार में देखो। किसान बैलों से काम लेता है। अनाज-अनाज घर में रख लेता है और भूसा बैलों को दे देता हे। दुकानदार बनिया मुनीमों से काम कराता रहता है। थोड़ी-२ बरायेनाम आमदनी उनको देता है बाकी आप हड़प कर जाता है।

ब्रह्मा या काल की सबसे बड़ी ताक़त माया है। माया राधास्वामी मत में (मा) (माप) और या नापने का आला है। यह और कुछ नहीं है, सिर्फ अक्ल है। ब्रह्मा की अक्ल का नाम माया है। यह अक्ल पेंच-दर-पेंच है और पेच-दर-पेच जाल में काल ने सबको उलझा रखा है। एक तो काल की यह अक्ल है जिसे सम्पत्ति माया (मजमई अक्ल) कहते हैं और दूसरी इन्सान की इनफरादी (अपनी) अक्ल से जिसे बेशी माया कहते हैं। जिस तरह से काल की मजमूई आसमानी अक्ल पुरपेच है उसी तरह इन्सान की भी अक्ल पेच-दर-पेच है। गोया इसके मायने यह हुए कि काल ने अपना जाल तो फैलाया ही था अक्ल वाले इन्सान ने भी अपनी अक्ली दलीलबाजियों से नया मायाजाल फैला कर अपने हाथ-पांव फंसा दिये 'यक न शुद दो शुद' और ये सबन है कि जीव बहुत बुरी तरह से मारा जा रहा है :—

अकल जज पेच दर पेच नेस्त ।
बर आफरां जज खुदा पेच नेस्त ॥

इस काल के जाल से बचने की तरकीब क्या है ? इसी बात को सतपुरुष राधास्वामी दयाल बड़ी मेहरबानी से समझाया करते हैं। लेकिन कोई उस पर यक़ीन नहीं लाता और यक़ीन भी सिर्फ वही शख्स लाता है जिस पर उनकी बड़ी मेहरबानी होती है।

वह राज़ क्या है ? वह यह है कि काल के इष्ट को छोड़ो और दयाल के इष्ट को धारण करो। काल और दयाल के फर्क को समझो। राधास्वामी दयाल मत है बाकी और दुनिया के मत काल मत हैं। क्योंकि ये सब के सब दसवें द्वार के इधर ही रहते हैं, आगे की खबर नहीं देते।

———

सत्संग परमदयाल

फ़कीर चन्द जी महाराज

ऐ सच्चे दाता दयाल (महर्षि शिव) ! ऐ सच्चे साँवले-शाह ! ऐ परम तत्त्व आधार ! मैंने अपना जीवन तेरी तलाश में व्यतीत किया। सच्चाई और असलियत के जानने की लालसा थी। मौज हजूर दाता दयाल (महर्षि शिव) की शरण में ले गई। वहाँ से मेरे भाग्य में राधास्वामी मत या कबीर मत आया। कर्मभोग वश और गुरु आज्ञा के अनुसार अपने जीवन का अनुभव मानव जाति के कल्याण के लिए वर्णन कर रहा हूँ। यदि यह ठीक है तो ठीक। यदि यह गलत है तो मेरे शरीर को नष्ट कर दे ताकि संसार के लोग मेरे बचनों से पथ-भ्रष्ट न हों।

प्रातःकाल के सत्संग में जो कुछ मैंने कहा, अपने जीवन की प्रार्थना के अनुभव के पश्चात् वर्णन किया। वह प्रार्थना क्या है :—

तू सच्चा है मुझे सच्चाई बख्श, बख्श सतगुरु प्यारे।
तू प्रकाश है तेरी दया से, प्रगटे घट रवि शशि तारे॥
तू दाता है दान दे मुझको, नाम रत्न धन का स्वामी।
मेरे मन में आके समाजा, जो तू है अन्तर्यामी॥

तू है ज्ञान ज्ञान दे मुझको, मेट तिमिर अज्ञान मेरा।
तेरे रूप का दर्शन पाऊं, क्षण प्रति क्षण रहे ध्यान तेरा॥
तू सत है अपनी सत्ता दे, जीवन मेरा सुधर जावे।
तू चित है निश्चल कर चित को, निश्चित ज्ञान मुझे भावे॥
सत चित आनन्द रूप है तेरा; दे आनन्द मुझे सतगुर।
नाम रूप के तेरे सहारे, जीते जी जाऊं सतपुर॥
राधास्वामी परम पुरुष करतारा, तू दुखियों का सहारा है।
दुःख दरिद्र को मेट दे मेरे, दुखदाई संसारा है॥
चरण शरण की ओट गहूँ मैं, आनन्द मंगल साज सजूं।
राधास्वामी-हित से सुमिरूँ, राधास्वामी-2 नित भजूं॥

यह प्रार्थना मेरे सारे जीवन का ध्येय रही है। Make me to lead life which thou pleasest best (ऐ मालिक! मुझ से वही करा जो तेरी इच्छा हो)। सच्चाई की खोज में जो अनुभव में आया वह कहता रहता हूं। मनुष्य से 'तुख्म तासीर सुहबत का असर' नहीं जाता। मन के संकल्प-विकल्प और वाह्य प्रभाव उसे प्रभावित करते रहते हैं। वास्तव में हम परमतत्त्व के अंश हैं जहाँ से कि हम आये हैं और स्वाभाविक रूप से हमारा रुझान उधर जाता रहता है। साथ ही समाज की, शरीर की तथा स्थूल प्रकृति की ओर हमारी दृष्टि जाती रहती है और इनकी संगत में या प्रभाव में आकर दुःख भोगते हैं। हम संकल्प-विकल्प में आकर फँसे हैं। यह माया है। दाता दयाल ने माया का अर्थ लिखा है मापने का यन्त्र। वह यन्त्र क्या है? वह यन्त्र हमारा मन है। वह विचार चाहे सामाजिक हों, राजनैतिक हों सब के सब माया हैं।

गो गोचर जहाँ लग मन जाई। सो माया कृत जानो भाई॥
(तुलसीदास)

ब्रह्म है प्रकाश और माया है ख्यालात हर किस्म के ।
यह अनुभव है जिन्दगी का, कह चला हूँ वे डर होके ।।
जहाँ तक संकल्प है और संकल्प की रचना ।
माया देश है दोस्तो यह है निज अनुभव अपना ।।

जहाँ तक मानसिक संकल्प अथवा विचार ने काम किया वह सब माया ही निकला । ईश्वर और ब्रह्म को मैंने क्या समझा ! वह है प्रकाश । इसलिए जो प्राणी अपने अन्दर में स्वयम् प्रकाश रूप हो जाता है, उस समय वह स्वयम् ईश्वर कोटि या ब्रह्म कोटि में रहता है या वह वही हो जाता है । उस अवस्था में रहने वाले में शक्ति होनी स्वाभाविक है कि उसका संकल्प पूरा हो । जो व्यक्ति अपने अन्दर प्रकाश का साधन करता है वह कालदेश या ब्रह्मदेश में जायेगा । जो प्रकाश का साधन नहीं कर सकता उसको मायादेश से निकलने की कोई सूरत नहीं है । जब संसार का तजुर्बा हो जाये और चित्तवृत्ति उपराम होने लगे तो अपने को प्रकाश में ले आओ । यही गायत्री मन्त्र की तथा राधा-स्वामी मत की शिक्षा है ।

प्रातःकाल के सत्संग में मैंने कहा था कि इस मायादेश में भली प्रकार जीवन व्यतीत करने का ढंग है 'शिवसंकल्प मस्तु' अर्थात् अपने संकल्प को, विचार को शुभ रखना । यदि हम अपने संकल्प को शुभ या कल्याणकारी नहीं बनाते हैं तो दूसरा जन्म जो संकल्प (ख्यालात) का ही होगा उससे बच नहीं सकते । या तो हम इस संकल्प के जगत् से इसी जन्म में निकल जायें वर्ना जन्म-मरण के फंदे से बचाव नहीं हो सकता ।

जब हमारा यही जन्म सुखदायक नहीं बना तो जो दुबारा जन्म होगा वह कैसे सुखदायक हो सकता है । सवाल पैदा होता है कि क्या आगे जन्म होता है ? हाँ, होता है ।

जन्म केवल उनका नहीं होता जिनको गुरुज्ञान हो जाता है। गुरुज्ञान को समझना और बात है और तद्रूप हो जाना और बात है। अर्थात् केवल समझ लेने से जन्म-मरण का चक्र समाप्त नहीं होता।

काल क्या है ?

काल क्या है ? काल सृष्टि की रचना (Creation of world) करता है। काल का पैदा करने वाला परमतत्त्व है। बीसवीं शताब्दी के लोग इसे सुनने को तत्पर नहीं। पंथिक जगत् की बातों को लोग ग़लत कहते हैं। ज़रा अपनी उत्पत्ति पर ध्यान दो। तुम अपने पिता के दिमाग़ में वीर्य्य के एक छोटे से कीटाणु थे। वह कीटाणु उस भोजन से बने जो तुम्हारे पिता ने खाया और जिससे रक्त और वीर्य्य बना। यह खाद्य पदार्थ पृथ्वी से प्राप्त किये गये मगर ताप और प्रकाश के बिना पृथ्वी खाद्य पदार्थ उत्पन्न नहीं कर सकती। इस तरह तुम्हारा शारीरिक जीवन वास्तविक रूप से ताप और प्रकाश है। अर्थात् तुम्हारे स्थूल शरीर का रचने वाला प्रकाश है। सन्तमत में इसी को काल कहा है। अत: जब तक कोई व्यक्ति अपने आपको प्रकाशमय नहीं बना सकता, माया के देश से नहीं निकल सकता। प्रकाशमय बनने के लिए शुरू में आपको कोई रूप बनाना पड़ेगा जो आपका ही बनाया हुआ या कल्पित रूप होगा। यह मायारूपी बनाया हुआ रूप ही तुम्हारी सहायता करेगा, चाहे वह रूप राम का हो या कृष्ण का या गुरु का अथवा कोई और। वह इसी काल और माया का है। वह व्यक्ति अपने ही विश्वास से माया से निकल कर वहाँ जायेगा जहाँ उस रूप का वास है यानि प्रकाश में जायेगा; क्योंकि जिस संकल्प से तुमने वह रूप बनाया है उस संकल्प की उत्पत्ति

प्रकाश से हुई है। जहाँ तक प्रकाश का सम्बन्ध है सब का सब काल है। जिसने गुरु द्वारा इसके रूप को पहिचान लिया वह इसके असर से बच गया।

जो व्यक्ति गुरु को पूर्ण मान कर चलेगा चाहे वह गुरु अपूर्ण हो, कामी हो, कुटिल हो, विश्वास रखने वाले को हानि नहीं होगी। हानि उस गुरु की होगी जो इस आड़ में जीवों से दान लेता है और मान कराता है। उस दान के पैसे से महल बनाता है और अपने आराम और शौक में लाता है। गुरु को पूर्ण मानकर साधन करने वाला व्यक्ति अवश्य पूर्णता को प्राप्त कर लेगा। गुरु को पूर्ण मानने से अभिप्राय यह है कि गुरु को काल और माया के परे का वासी समझे अर्थात् उसको परमतत्त्व का रूप समझे।

सुबह के सत्संग में मैंने साधु महात्माओं का खंडन नहीं किया किन्तु भेषधारियों का खंडन किया है। साइंस ने सिद्ध किया है कि मानव शरीर एक रेडियो स्टेशन है। प्रत्येक शरीर के अन्दर से मानसिक धारें निकलती रहती हैं। जो महात्मा स्वयं सच्चे नहीं हैं और उनके शिष्यों का इतना विश्वास होता नहीं कि उनको पूर्ण मानें, तो इन महात्माओं की धारें उनके जीवन को पूर्ण नहीं होने देंगी। हाँ, यदि पूर्ण विश्वास रखने वाला शिष्य मिल गया तो वह अपूर्ण गुरु भी उस शिष्य की पूर्ण विश्वास की धारों से तर जायेगा। स्वामी जी महाराज से किसी ने प्रश्न किया था कि हजूर महाराज (राय सालिग राम साहिब) के आप गुरु हैं? उत्तर दिया गया कि क्या पता कि मैं उनका गुरु हूँ या वे मेरे गुरु हैं। इससे प्रकट है कि गुरु-चेला एक व्यवहार है किन्तु जीवों को इस मानसिक अवस्था से उभारने को सच्चे साधु या पूर्ण पुरुष या गुरु की आवश्यकता है।

अधिकारी कम हैं। लोग दुनिया के दुःख लेकर आते

हैं। कबीर साहिब का कथन है :—

ऐसी दिवानी दुनियां, भक्ति भाव नहिं बूझै जी ।।१।।
कोई आवे तो बेटा माँगै, यही गुसाँई दीजै जी ।।२।।
कोई आवै दुःख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी ।।३।।
कोई आवै दौलत माँगे, भेंट रुपैया लीजै जी ।।४।।
कोई करावे ब्याह सगाई, सुनत गुसाँई रीझे जी ।।५।।
साँचे का कोई गाहक नाहीं, झूठे जत्क पतीजै जी ।।6।।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, अंधों को क्या कीजै जी ।।७।।

जीवन व्यवहार कैसा हो ?

हजूर साँवले साहिब (हजूर बाबा सावन सिंह) कहा करते थे कि जीवन एक घोड़ा है। उस पर दो रकावें हैं— एक परमार्थ की और दूसरी स्वार्थ की। जो केवल प्रकाश या आत्मिक अवस्था की ओर चला गया, व्यावहारिक जगत् में उसका जीवन कठिन हो गया और जो केवल दुनियादार हो गया वह भी ठीक नहीं रहा। घोड़े पर जब तक सवार दोनों रकाबों को बराबर रखेगा तभी तक वह ठीक तरह से सवारी कर सकता है अन्यथा जहाँ एक ओर को अधिक जोर हुआ कि उसका गिर जाना आसान है। इसलिए जीवन को समता की दशा में रखो। दुनिया का काम भी चले और धर्म का भी। दोनों पल्ले बराबर रहें। इसलिए जीवन व्यवहार में यह अत्यन्त आवश्यक है कि तुम्हारे विचार शुभ हों, कल्याणकारी हों। 'शुभसंकल्पमस्तु'। इससे तुम्हारा भी भला होगा और दूसरों का भी। दूसरों के अशुभ चिन्तन से तुम्हारी भी हानि होगी और दूसरों की भी।

दूसरी बात जो ध्यान में रखनी है वह यह है कि अपना ही विश्वास फल देने वाला होता है। शास्त्रों का भी कथन है—"विश्वासं फलदायकम्।" इसलिए यदि तुमने यह

विश्वास कर लिया कि मेरा भाई मेरा शत्रु है तो वह तुम्हारे साथ चाहे जितनी भलाई करे तुम्हारा भला नहीं होगा क्योंकि तुम्हारा अपना विश्वास ही उसका कारण है। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति ने यह विश्वास कर लिया कि उसकी स्त्री व्यभिचारिणी है, यद्यपि वह नेक है तो यह भ्रम बढ़ता जायेगा और उसकी संकल्पशक्ति स्वयं उसको हानिकर होगी और उसके ख्याल की धार स्त्री पर भी प्रभाव डाले बिना न रहेगी। हिन्दुओं ने जब यह सोचा हुआ है कि सिख बुरे हैं तो कहो फिर शान्ति कहाँ! ऐसे ही यदि सिखों ने यह सोचा हुआ है कि हिन्दु खराब हैं तो फिर भी शान्ति सम्भव नहीं। क्योंकि तुम्हारे ही ख्याल की धार में वही सिद्धान्त जो ऊपर कहा है काम करता है। जब तुमने यह विश्वास कर लिया है कि कांग्रेस का शासन खराब है तो इससे कोई लाभ तो होगा नहीं हाँ, हानि अवश्य हो जायेगी। इसलिए बार-बार कहता हूँ कि अपने विचारों को शुभ और हितकारी बनाओ। इसी असूल को ध्यान में रखते हुए तुम भी घरों में तथा समाज में रहते हुए अपने बच्चों, सम्बन्धियों आदि को उभार सकते हो। ग़लती किससे नहीं होती। यदि तुम्हारे किसी पड़ौसी ने या किसी बच्चे ने ग़लती की तो उसे बुरा-भला मत कहो। फटकारो मत।

स्त्री ने साग, दाल में किसी दिन नमक अधिक डाल दिया तुमने उसे फटकार दिया कि फूहड़ है। यह व्यवहार ठीक नहीं। इसका परिणाम यह होगा कि तीसरे दिन फिर खराबी हो जायेगी। इसलिए अपने घरों में प्रेम से संभालो। फटकार से काम मत लो। मैं तुमको व्यवहार करने का ढंग (art) बता रहा हूँ और चाहता हूँ कि तुम सुखी रहो। यदि तुम सुखी हो और तुमको कोई दुःख प्रतीत नहीं होता तो तुम मूर्ख हो जो यहाँ आये हो। डाक्टर के पास बीमार

जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि तुम वास्तव में दुःखी हो और सुखी होना चाहते हो तो अपने संकल्प को, अपने विचारों को और अपने भावों को उभारो और श्रेष्ठ बनाओ।

दाता दयाल कहा करते थे कि फकीर! मुझे 110 के बदमाशों से कोई नुकसान नहीं हुआ किन्तु उनसे हुआ जिनके बारे में मेरे मन में यह ख्याल रहता था कि यह बुरे हैं। इसलिए बुरी आदत कभी मत सोचो किन्तु आशावादी बनो। जीवन में सुखी रहने का यह एक गुर है।

उभारना

मनुष्य इस जगत् में बुरी तरह फँसा हुआ है और दुःखी है। इस दुःखमय जीवन से उभारने को साधु-महात्मा आते हैं। पढ़ो गुरु बाणी :—

गुरु बिन कौन उबारेगा। नाम बिन कौन सुधारेगा॥
भजन बिन कौन निस्तारेगा। सरन बिन कौन सँवारेगा॥
विरह बिन कौन पुकारेगा। दर्द बिन कौन चितायेगा॥
शब्द बिन कौन सिंगारेगा। संग बिन कौन निहारेगा॥
काल को कौन मारेगा। कर्म किस भाँति हारेगा॥
सन्त कोई आन मारेगा। भक्त कोई दोऊ जारेगा॥
काम सतसंग सारेगा। जोई तन मन को वारेगा॥
सोई निज नाम धारेगा। जगत् को आन तारेगा॥
जीव इक इक उबारेगा। मान मद मोह टारेगा॥
सरन सतगुरु सम्हारेगा। नाम पद सो निहारेगा॥
राधास्वामी को सरावेगा। सोई वह धाम पायेगा॥

बाणी को समझो। तुम दलदलों में फँसे हो। दुःखी हो। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा उत्साह और हौसला बढ़ जाये। मैं यदि स्वामी जी की बाणी के इस शब्द व्याख्या की

करूँ तो 7 दिन लगेंगे मगर इस समय मैं केवल एक उभारने के ख्याल को ले रहा हूँ। बात को सोचो कि उभारना क्या है ? जो डूबा है उसको ऊपर उछाल देना है। लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के दुःखों में ग्रसित हैं। सहानुभूति रखने वाले उनको हौसला देते हैं, फटकार नहीं मारते। हौसला देना ही उभारना है।

इसलिए हौसलामंदी का ख्याल रखो। दूसरों को उत्साहित करो। दाता दयाल (महर्षि शिव) सदा उत्साहित किया करते थे। मैं सन् 1905 ई० में दाता दयाल के दरबार में गया था। बड़ा दुःखी था। बोले—"फकीर ! तू फकीरों में चाँद बनेगा।" यह क्या था ! हौसला था। जहाँ तक उभारने का सम्बन्ध है वहाँ वेदान्त स्वयं गुरुमत है।

किसी समय मेरे घर पर 20-20 सत्संगी रोटी खाने को आ जाते थे। मैंने हज़ूर साँवलेशाह से कहा कि मैं इस सत्संग के काम से दुःखी हूँ। लोग तंग करते हैं। इसे नहीं करना चाहता। उन्होंने कहा कि फकीर ! गुरु आज्ञा मुख्य है। काम करो। इस प्रकार उन्होंने मुझे उभारा और मुझे हौसला दिया मगर स्वार्थी साधु ऐसे होते हैं जो दूसरों को कमहौसला कर देते हैं अर्थात् उभारने के बजाय गिराते हैं। इसकी एक मिसाल सुनाता हूँ। सन्त सिंह नामी एक व्यक्ति जो अब अमरीका में रहता है, वह अपनी कुछ गलतियों की वजह से दुःखी था। अमृतसर में किसी महात्मा ने उसको डराया कि तुमको अपने पापों की वजह से नरक कुण्ड में आग से तपे हुए खम्भों से बाँधा जायेगा, मगर साधु सेवा से इन पापों का फल नष्ट हो जायेगा। इस सेवा के सम्बन्ध में उस बिचारे ने दस साल के अर्से में ग्यारह हजार रुपया उस साधु की भेंट किया। उसके बाद मालूम हुआ कि उस रकम का उस साधु की औलाद शराब और मांस में हज़म

कर गई और साधु जी महाराज अन्तिम अवस्था में रोगी होकर किसी सराय में जीवन के दिन काटते थे। यह है मिसाल ग़लत साधुपन की। यह उभारना नहीं है बल्कि डुबाना है।

उभारना 3 प्रकार का है :—(1) देह से (2) मन से और (3) आत्मा से। इसको उदाहरणों से स्पष्ट किये देता हूँ।

(1) देह से या स्थूल जगत् से उभारना—दुर्गादास (सेठ दुर्गादास चण्डीगढ़) 18 वर्ष की उम्र में बसरा गया था, जब मैं वहाँ था। मैंने इसको उभारा। ऊँचे ख्याल दिये। बड़े आदमी होने का ख्याल दिया कि तू बड़ा आदमी अर्थात् धनवान हो जायेगा। आज 60 वर्ष की उम्र में वह जवानों से तगड़ा है और बड़ा धनवान है।

(2) मन से या मानसिक रूप से उभारना—मेरे छोटे भाई रायसाहिब दाता के दरबार में गये। उस समय मैं रेलवे में सिगनलर (Signaller) था। दाता ने उनका नाम बदल कर कहा कि इसे कुर्सी पर बिठाओ, जिसका भाव यह था कि यह किसी उच्च पद पर कार्य करेगा और वास्तव में वह कुर्सीनशीन हुए अर्थात् रेलवे के चीफ कण्ट्रोलर के पद पर पहुँच गये। उच्च संस्कार या ऊँचा ख्याल देना मानसिक तौर से उभारना है।

(3) अब आत्मिक उभार की बात सुनो। मैं सांसारिक दुःखों से घबराया हुआ एक नीच और पतित जीव की हैसियत में दाता की शरण में गया था। उन्होंने मुझे संस्कार दे-देकर यहाँ तक उभारा कि मुझे संसार का कल्याण करने वाला, भव के दुःखों को मिटाने वाला, परम दयाल कहकर उभारते हुए इस पदवी पर पहुँचा दिया कि मैं वही काम कर रहा हूँ।

यह उभारने का ढंग हर व्यक्ति के लिए एक जैसा नहीं है। इसको पूर्ण गुरु ही जानता है। हर एक आदमी यह काम नहीं कर सकता है। मैं चाहता हूँ कि तुम उभरो। बेहतर ख्याल लो और अपने संकल्प को बेहतर बनाओ।

मत या पन्थ सब ठीक हैं मगर इन डेरों और धामों ने तबाह कर रखा है क्योंकि डेरे, धाम वाले डेरे, धामों के चलाने में फंसे रहते हैं और उनके चलाने को रुपये की ज़रूरत रहती है और 420 खेलना पड़ता है। स्वार्थ के वश रहते हैं। जब वे स्वयं फंसे हैं, स्वतन्त्र नहीं हैं तो दूसरों को कैसे उभार सकते हैं? मैं इसी कारण से किसी डेरे और धाम के फँसाव में नहीं आया।

गद्दीपतियों में इतना साहस नहीं होता कि वह किसी को इतना ऊँचा उभारें क्योंकि कुछ समय के बाद उनके उस उभारने के शब्दों की बजह से उनकी गद्दी की मानता कम हो जाती है और दुनिया रहस्य को न समझती हुई डेरों में बँट जाती है। मैंने इसीलिए डेरे और धामों से कोई सम्बन्ध नहीं रखा; क्योंकि सांसारिक मान और दौलत की वजह से जीव धड़ाबन्दी में आ जाते हैं और दुनिया में लड़ाई, झगड़ा और जायदादों के लिए मुकद्दमेबाज़ी पैदा हो जाती है।

मैं आपको सच्चाई बताता हूँ तथा जीने का राज़ (भेद) समझाता हूँ। जीवन व्यवहार में ममता से चलने का गुर बयान करता हूँ। राधास्वामी दयाल भी दुनिया को चिताने को प्रकट हुए थे, जैसा कि इस बाणी से प्रकट है:—

राधास्वामी धरा नर रूप जगत् में, गुरु होय जीव चिताये।
जिन जिन माना बचन समझ के, तिन को संग लगाये॥
कर सतसंग सार रस पाया, पी पी तृप्त अघाये।
गुरु संग प्रीति करी उन ऐसी, जस चकोर चन्दाये॥
गुरु बिन कल नहिं पड़त घड़ी इक, दम दम मन अकुलाये।

जब गुरु दर्शन मिलें भाग से, मगन होत जस बछड़ा गाये।
ऐसी प्रीति लगी जिन गुरु मुख, सो सो गुरु अपनाये।
तन की लगन भोग इन्द्री के, छिन में सब बिसराये॥
गुरु की मूरत बसी हृदय में, आठ पहर गुरु संग रहाये।
अस गुरु भक्ति करी जिन पूरी, तेते नाम समाये॥
स्वाति बूंद जस रटत पपीहा, अस धुन नाम लगाये।
नाम प्रताप सुरत अब जागी, तब घट शब्द सुनाये॥
शब्द पाय गुरु शब्द समानी, सुन्न शब्द सत शब्द मिलाये।
अलख शब्द और अगम शब्द ले, निजपद राधास्वामी आये॥
पूरा घर पूरी गति पाई, अब आगे कुछ कहा न जाये॥

गुरु किसको कहते हैं ? गुरु वह है जो अपने हित और बचनों से अशान्त को सहारा देता है और उन दुःखों से जिनसे वह दुःखी है उभार देता है।

ऐसे पुरुष का सत्संग करो जिसके दिल में मां जैसा दर्द हो। यदि किसी साधु के हृदय में दूसरे के दुःख से दुःख उत्पन्न हो जाये तो वह भी सन्त है। जिसमें ऐसी सहानुभूति हो, उससे तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा।

मैं दाता दयाल से प्रेम करता था। मैंने अपना सर्वस्व उनके अर्पण कर दिया, अपनी सारी आमदनी उनको भेजता रहता था। उन्होंने उस रुपये को इकट्ठा करके मेरी स्त्री को दे दिया। दूसरा होता तो चट कर जाता। मुझ से दाता दयाल ने यह कहा था कि यह सत्संग का काम तुम्हारे कल्याण के लिए देता हूँ। आप लोगों के अनुभवों से मेरी आँख खुली है। मैं लड़ाई के मैदान में फँसा। दूसरे और लोग भी लड़ाई में फँसे और जब वे वहाँ से आये तो उन्होंने कहा कि आपने हमारी बड़ी सहायता की और हमको बचाया। मैं जानता था कि मैं तो आप ही फँसा हुआ था, उनकी क्या सहायता करता मगर इसके बाद मेरी आँख

खुल गई और सच्चाई समझ में आ गई। मेरा मानसिक अज्ञान मिट गया। इसके बाद मैंने प्रकाश और शब्द को इष्ट बनाया। इससे मेरी मानसिक कमज़ोरियाँ समाप्त हो गईं और दाता दयाल के स्वरूप से अत्यन्त प्रेम हो गया और जीवन भर इस प्रेम को निभाया और अब भी निभा रहा हूँ क्योंकि मुझे निश्चय हो गया कि वह सचमुच परम-तत्त्व के ज्ञानरूपी अवतार थे और उनका अब तक कृतज्ञ हूँ। दूसरे इस सच्चाई को जानकर गुरु मत को छोड़ जाते हैं। यह कृतघ्नता है।

क्रोधी तरे कामी तरे; पापी तरे अनन्त।
एक कृतघ्नी न तरे, तरे न राम रटन्त॥

इस मानसिक अज्ञान के मिट जाने के बाद कई जो अगली आत्मिक मंज़िलें हैं उनमें भी वाह्य पूर्णपुरुष का संस्कार (Radiation) सहायता करता है। जो पुरुष सिर्फ इस ज्ञान को जो मैंने ऊपर वर्णन किया है, प्राप्त करके वाह्य पूर्णपुरुष को छोड़ देते हैं वह आत्मिक अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकते।

इसलिए इस माया देश से निकलने और सच्चाई का अनुभव करने के लिए किसी बाहरी पूर्णपुरुष की आवश्यकता है। वह पुरुष गुरु है। गुरु शब्द का वर्णन इस शब्द में विवरण के साथ आया है :—

मंगलम् गुरु शब्द रूप, अनाम नाम प्रकाशनम्।
मंगलम् शब्दार्थं, शब्दाधार, शब्द निवासनम्॥
गुप्त अपने आप में जब, अलख अगम अनाम आप।
जब प्रगट आनन्द ज्ञानाकार, अरु सतधाम आप॥
साज सन्त समाज मंगल, काज जीव उद्धार को।
आपने धारण किया है, परम सन्त अवतार को॥

आप हैं आधार सबके, आप के आधार सब।
वारपार से रहित आप हैं, और वारापार सब ।।
संग देकर सत का सतसंगत में, जीव आधीन को।
सिंधु सद्गति से मिलाया, जीव रूपी मीन को ।।
सैन बैन का आसरा, सत्संग द्वारा दान दे ।
शब्द योग सिखाया अनहद, धाम पद निर्वाण दे ।।
धन्य सतगुरु राधास्वामी, पार भव से कीजिये ।।
भक्ति मुक्ती योग युक्ती, ज्ञान शक्ति दीजिये ।।

कृषक ! तुमको यह काम जो सत्संग कराने और नाम देने का दिया गया है वह तुम्हारे उद्धार के लिए दिया गया है। ख्याल रहे दु:खियों का पैसा दु:खियों के काम आये। दान दिया जाये मगर गुरु की यह ड्यूटी है कि इस दान को दीन-दु:खियों को दे। जब तक गुरु या सत्संग कराने वालों में लालच है, रा-गद्वेष है, तो आशा नहीं की जा सकती कि उनका सत्संग लाभकारी होगा ; क्योंकि उनके अन्दर जो लोभ-लालच तथा राग-द्वेष है उसी के संस्कार उनके शिष्यों पर पड़ेंगे और उनकी हानि होगी। यह ठीक है कि धाम, डेरों के बिना काम नहीं चलता मगर सत्संगियों का पैसा पब्लिक के या सत्संगियों के काम आवे। गुरु या सत्संग कराने वाले को अपने काम में नहीं लाना चाहिए।

आजकल घरों की दशा बड़ी शोचनीय है। एक तो घरेलू खर्च ही काफी बढ़े हुए हैं दूसरे सरकारी टैक्स काफी हैं। फिर यह साधु या महात्मा कहलाने वाले खाये जाते हैं। एक तरह से लूट सी मची हुई है। इस लूट के विषय पर दाता दयाल (महर्षि शिव) का बड़ा सुन्दर शब्द है :—

जगत् में कैसी लूट पड़ी।
माता कहे पूत है मेरा, भाई भाई बनावे।
घर की तिरिया तन से लपटी, पति कह रार मचावे ।। जगत०

बहिन वीर कह हँस मुसकावे, मूसके धन ले जावे।
पुत्र बहू कहे ससुर सयाना, झूठे भाव दिखावे ।।जगत।।
राजा कहे मेरी है परजा, करे कमाई उद्यम ।।
मक्खन काढ़ मुझे दे उत्तम, पिये छाछ नित मध्यम ।।जगत०
पंडित दान दक्षिणा मांगे, साधू भिक्षाधारी।
तीरथ मठ मूरत और मन्दिर, लूटे लूट की बारी ।।जगत०
मरते समय आग यह बोली, इसे जला खाजाऊँ।
मिट्टी कहे गाड़ दे मुझ में, अपना अंश बनाऊँ ।।जगत०
हवा सुखावे पानी धुलावे, सिमटावे आकाशा।
चकित हुआ यह देखके लीला; लूट का अजब तमाशा ।।जगत०
मैं हूँ कौन, कौन है मेरा, इसको समझ न पाई ।
देख लूट का जग विस्तारा, लूट हुई दुखदाई ।।जगत०
कभी कभी भूल भरम में फँस कर, आप लुटूं लुटवाऊँ।
लूट लूट के लुट गया सारा, लूट का मरम न पाऊँ ।।जगत०
राधास्वामी की संगत पाई, समझ लूट की आई।
व्याकुल चित चरनों में आया, ली सत्गुरु शरनाई ।।जगत०

जब मनुष्य इस लूट की ओर ध्यान देता है तो घबराता है, दुःखी होता है और किसी का सहारा चाहता है या किसी की शरण चाहता है जो उसको इस दुःख से छुटकारा दिला दे। सवाल हो सकता है कि इस लूट से हम दुःखी क्यों होते हैं ? वह इस कारण से कि हम अपने आपको भूले हुए हैं। हम पर माया के खोल चढ़े हुए हैं अथवा हमको अपनी असलियत या अपने स्वरूप का ज्ञान न होने से हम इस लूट के चक्कर में फँस कर दुःखी होते हैं। इस दुःख से या फँसाव से कोई पूर्णपुरुष उभार सकता है। उसकी शरण लो और जो वह कहता है उसको मानो और बस !

सर्वसाधारण जीवों के लिए मैंने प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग दोनों ही रखे हैं जिस तरह कि घोड़े की सवारी

में दोनों पैर दोनों रकाबों में बराबर रखना आवश्यक है। अकेला निवृत्तिमार्ग केवल उनके लिए है जो दुनिया से फारिगुलवाल हो चुके हैं और आत्मिक अवस्था प्राप्त करने की जिनकी प्रबल इच्छा है।

गृहस्थ में रहते हुए अथवा सांसारिक कार्य करते हुए जो साधन हो वह सहज रीति से हो। पहले देह से निकला जाये। देह से निकलना क्या है ? सहस्रदल और त्रिकुटी का साधन। त्रिकुटी के साधन में ओ३म् का राज्य है। इसके आगे प्रकाश का साधन करो। यही गायत्री मन्त्र है मगर याद रहे "बिन गुरु घट में राह न चलना।" अर्थात् इस मार्ग में चलने के लिए गुरु की हिदायत अत्यन्त आवश्यक है।

हिन्दुओं में यह प्रथा चली आती है कि मरने वाले के पास दीपक जला कर रखते हैं। उसका भाव यही है कि तेरा रूप प्रकाश है। यह ख़्याल देना उभारना ही है।

यहाँ इतना और कहे देता हूँ कि आप में से जो सत्संग कराते हैं उनको सत्संग कराने से पहिले स्वयं प्रकाशमय हो जाना चाहिए अर्थात् वे स्वयं पहिले प्रकाश का साधन कर लें तब सत्संग करायें।

अति विशिष्ट सूचना

मानव मन्दिर कार्यालय से पत्राचार करते समय अपना ग्राहक नम्बर लिखना न भूलें, ग्राहक नम्बर न देने से उत्तर नहीं दिया जायेगा।

जनरल सेक्रेटरी

सत्संग परमसन्त हजूर मानव दयाल

डा. आई. सी. शर्मा जी महाराज

अलवर 24-3-87

शब्द

भरोसा तेरा है तेरी आस मन में ।
लगा रहता हूँ तेरे सुमिरन भजन में ।।
यही है जतन और यही काम मेरा ।
जपा करता हूँ रात दिन नाम तेरा ।।
तेरी मौज में रह के निश दिन सुखी हूँ ।
नहीं भय न चिन्ता न जग से दुःखी हूँ ।।
खुली आँख से तेरा दर्शन जो पाया ।
मिटे सहज में मान मद मोह माया ।।
न जोगी न साधु न ज्ञानी बना मैं ।
न भोगी असाधु न मानी बना मैं ।।
जो था पहले अभी वही रूप मेरा ।
न व्यापा मुझे काल का हेरा फेरा ।।
न जागा न सोया न सुषुप्ति में आया ।
न आसा निरासा के भय ने सताया ।।
न दौड़ा न बैठा न लेटा कभी मैं ।
न माता पिता और न बेटा कभी मैं ।।

नहीं ब्रह्म माया का है द्वन्द मुझको।
सहज रूप है और सहज कर्म बानी ।।
सहज में सहज की सहज हो निशानी।
सहसदल अनेक और त्रिकुटी की त्रिपुटी ।।
दशा द्वैत की सुन्न में भी न प्रगटी।
महासुन्न अद्वैत का भाव छूटा ।।
भँवर में नहीं काल माया ने लूटा ।
अलख हूँ अगम हूँ अनामी बना हूँ ।।
कहूँ कैसे कैसा कहाँ और क्या हूँ ।
गुरु राधास्वामी ने आकर चिताया ।
मेरा रूप मुझको सहज में लखाया ।।

सर्ववेदान्तसिद्धान्तगोचरं तमगोचरम् ।
गोविन्दं परमानन्दं सद्गुरुं प्रणतोऽस्म्यहम् ।।
परमतत्त्वस्य अवतारं, परमपूज्यं सत्संगिनाम् ।
मानवस्य परम् इष्टं, फकीरं वन्दे जगद्गुरुम् ।।

राधास्वामी !

मेरी अपनी आत्मा के स्वरूप प्यारे सत्संगी भाइयो और बहनो, मैं काफी अर्से से इस सत्संग के काम में मग्न चला आ रहा हूँ ; सद्गुरु की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। मैंने एक मंगलाचरण रखा है, जिसका मतलब यह है कि इस जगत् में युग-युग में, समय-समय पर अनेक योगी आये; ऋषि-मुनि आये, सद्गुरु वक्त आये। उन्होंने उस समय के मुताबिक दुःखी जीवों को परमधाम पहुँचाने, मालिक से मिलाने के यत्न किये, तरीक़ा बताया, योग सिखाया। योगी का मतलब वही नहीं है जो तपस्या करता हो, जो भगवे कपड़े पहनता हो। योगी वह है जो अपने आपको परमतत्त्व आधार की धार से मिला देता है। जिसने यह सारा जगत् बनाया है उसको आदिकर्त्ता कहते हैं। एक कर्त्ता है, और

दूसरा आदिकर्त्ता है। कर्त्ता वह है जो इस भौतिक स्थूल जगत का, जिसे आप देखते हैं, छू सकते हैं, सुन सकते हैं, अपनी ज्ञानेन्द्रियों से अनुभव कर सकते हैं, इस ठोस जगत् का बनाने वाला है कर्त्ता। उस कर्त्ता को ब्रह्मा कहते हैं। लेकिन हम ब्रह्मा की बात नहीं कर रहे हैं। हम तो उस कर्त्ता की बात कर रहे हैं जो ब्रह्मा और विष्णु से भी ऊपर है। यह भौतिक स्थूल जगत् कहाँ से उत्पन्न हुआ? आपने चित्रों में देखा होगा कि विष्णु शेषनाग की शैय्या पर सो रहे हैं और उनकी नाभि से निकले हुए कमल पर ब्रह्मा बैठे हुए हैं यानि कि विष्णु के मन से यह सारा जगत् पैदा हुआ है। विष्णु सूक्ष्म रूप में इसके पीछे बैठे हुए हैं। सन्त-मत विष्णु के अस्तित्व को इन्कार नहीं करता। ना ही सन्तमत यह कहता है कि इस जगत् का कर्त्ता ब्रह्मा नहीं है। ब्रह्मा ने इस जगत को रचा। देवता और देवियाँ वह शक्तियाँ हैं जो इस जगत् को चला रही हैं। ये सारी शक्तियाँ प्रकाशमय हैं, और उसी विष्णु की धार हैं। विष्णु प्रेममय है। यह सारा जगत् प्रेम की शक्ति से बना है। सन्तों ने ब्रह्मा को विराट् कहा है। भगवद्गीता में विराट् रूप देखा कि नहीं देखा? सन्त कोई नई बात नहीं कहते। राधास्वामी मत सुरत-शब्द योग, जो मालिक को मिलने का तरीका है, कोई नया नहीं है। हाँ, पहले यह प्रचलित नहीं था। जिस युग में जो ऋषि, जो प्रवर्त्तक आये, उन्होंने उसे युग के मुताबिक तरीका बताया। सतयुग में ध्यान लगाने का तरीका बताया क्योंकि सतयुग में उम्र लम्बी होती थी। पर ध्यान किसका लगायें? मालिक के स्वरूप का तो पता नहीं था। प्रथम मनु और उनकी अर्द्धांगिनी शतरूपा जब गृहस्थाश्रम से निवृत्त हुए तो उन्हें आदेश हुआ कि मालिक का ध्यान लगावें। उन्होंने हजारों साल तक ध्यान लगाया तो नारायण मनुष्य के रूप

मैं प्रकट हुए। नारायण इस जगत् के कर्त्ता का भी आधार है। ब्रह्मा उसी से निकला है। विष्णु, जो सब जगह विराजमान है, उसका कोई रूप नहीं है। चूंकि मनु-शतरूपा ने उसका ध्यान लगाया, जो मनुष्य थे, इसलिए नारायण मनुष्य रूप में प्रकट हुआ। वह मालिक मनुष्य रूप में प्रकट हुआ। ब्रह्मा, विष्णु, शिव उसी एक मालिक के अलग-२ दर्जे हैं। मैं अभी नैमिषारण्य, मिश्रिक तीर्थ स्थान पर गया था। वेदव्यास की समाधि वहीं है। मनु-शतरूपा का स्मारक भी वहीं है। वहाँ एक समय था जब अठासी हज़ार ऋषि-मुनि मालिक से मिले हुए बैठकर मन में सोच रहे थे कि मनुष्य के दुःखों को कैसे दूर किया जाये। क्योंकि ऋषि और सन्त तो जीवों को कैद से छुड़ाने के लिए आते हैं। सद्गुरु स्वयं बंधुआ बन कर जीवों को बन्धन से मुक्ति दिलाने आता है। और उसी रूप में आता है जिस रूप में बंधुए बैठे हुए हैं, क्योंकि जिस रूप में जीव होता है उसी रूप से वह प्यार कर सकता है। इसलिए मालिक नारायण के रूप में प्रकट हुआ; विराट् के रूप में भी नहीं क्योंकि जब अर्जुन को विराट् रूप दिखाया तो वह डर गया :—

'बंदौं गुरुपद कंज, कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज; जासु बचन रविकर निकर ॥'

तुलसीदास जी सन्त थे। हर युग में सन्त हुए हैं। और सन्त मालिक का अवतार होता है। मालिक किसी विशेष जाति में ही अवतार नहीं लेता; वह जुलाहे के घर भी कबीर बनकर आ सकता है। उसकी कोई सीमा नहीं। नाभा जी का नाम आपने सुना होगा। वह डोम जाति में पैदा हुए थे। वाराणसी में रहते थे। आँखों से दिखाई नहीं देता था। वहाँ गलता जी के दो साधु थे, जिनमें अग्रदास ने इस बालक को देखा और पूछा, "तू कौन है?" नाभा

जी ने उत्तर दिया, "मैं क्या बताऊँ कि मैं कौन हूँ ? मैं शरीर तो हूँ नहीं, ना ही मैं मन हूँ। फिर मैं क्या बताऊँ कि मैं कहाँ से आया हूँ !" आदि-आदि बातें कीं। साधुओं ने सोचा—यह तो कोई महात्मा मालूम होता है। उसकी आँखें बन्द थीं। उन्होंने कमल के पत्ते से उसकी आँखें खोलीं तो उसे दिखाई देने लगा। उसे वे गलता जी में लाये जहाँ गालव ऋषि का आश्रम है। यह कोई चार सौ साल की बात है। उसे आश्रम में रखा और कहा, "आश्रम में जो साधु-सन्त आवें, उनकी तू सेवा किया कर।" सच्चा साधु वह है जिसने अपने को साध लिया है, जिसके अन्तस् में परम-तत्त्व आधार मालिक हर समय बिराजते हैं, और उसी के आधार पर वह सबसे हरदम व्यवहार करता है। बालक नाभा जी आश्रम में आये साधु-सन्तों की सेवा करता, उन्हें भोजन कराता, और जो प्रसाद बचता उसे स्वयं खाता। साधु-सन्तों के संग के प्रभाव से उसमें जागृति आ गई। एक समय अग्रदास समाधि में निमग्न किसी सत्संगी की चिन्ता कर रहे थे। समाधि के नीचे के दर्जों में कभी-कभी पता चल जाता है कि कौन भक्त किस कष्ट में है। यह कोई बड़ी बात नहीं है। अग्रदास को समाधि में पता चला कि एक सत्संगी जो नाव में बैठा है, उसकी नौका डूब रही है। बालक नाभा जी भी समाधि में था और उसने देखा कि गुरु अग्रदास बड़े चिन्तित हो रहे हैं, तो वह बोल पड़ा, "महाराज, नाव डूबी नहीं, वह बच गई।" अग्रदास को सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और नाभा जी से पूछा, "तुम्हें कैसे यह ज्ञात हुआ ?" उसने कहा, "मुझे समाधि में अनायास पता चला कि आप जिस भक्त की नाव डूबने की चिन्ता में हैं, वह डूबी नहीं, बच गई।" अग्रदास ने कहा, "आज से तू सब काम-काज छोड़कर भजन-गीत गाया कर। और

जितने भी भक्त और सन्त हो चुके हैं, उनकी जीवनी तू लिख।" उसने कहा, "महाराज, यह मैं कैसे करूंगा?" अग्रदास जी बोले, "हम तुझे वरदान देते हैं कि जिस भक्त या सन्त का ध्यान करेगा, उसका जीवन-चरित्र तुझे आकाश में दिखाई देगा। आकाश में सभी बीते हुए लोगों की जीवनियों के रेकार्ड मौजूद रहते हैं। उनसे तुम्हें सहायता मिलेगी।" नाभा जी ने इसी युक्ति के सहारे "भक्तमाल" नामक अनमोल पुस्तक लिखी जिसमें सभी भक्तों या सन्तों के जीवन-चरित्र हैं। उनके भक्तमाल की अबतक प्रशंसा होती है। वे काशी गये और वहाँ "भक्तमाल" सबको सुनाई और अन्तिम दिन उसका भण्डारा किया। सभी साधु-सन्तों को आमन्त्रित किया। सभी भक्त, साधु, सन्त आये, पर तुलसीदास जी के मन में थोड़ी देर को शंका हुई कि नाभा तो डोम जाति का है; मैं उसके घर कैसे खाऊँ? पर सब साधु-सन्तों को जाते देख कर उन्हें आत्म-ग्लानि हुई और जाने का निश्चय किया :—

'जाति-पाँति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजे सो हरि का होई॥'

जब वहाँ पहुँचे तो सभी साधु-सन्त पंक्तियों में बैठ चके थे और भोजन परसा जा रहा था। तुलसीदास जी सबसे पीछे, जहाँ सबने जूते उतारे थे, चुपचाप बैठ गये। पत्तल थी नहीं तो रोटी हाथ में ले ली और नाभा जी के जूते में दाल ले ली। जब उन्होंने एक ग्रास खाया और दूसरा ग्रास तोड़ने लगे तो नाभा जी ने देख लिया। दौड़कर आये और तुलसीदास जी का पाँव पकड़ लिया और बोले, "महाराज, सारा पुण्य अकेले आप ही लेना चाहते हैं? यह कैसे हो सकता है? मुझे भी प्रसाद मिले।" यह थे नाभा जी—डोम जाति के। तुलसीदास उनके सामने नतमस्तक

हो गये। नाभा जी ने भक्तमाल में तुलसीदास जी को भक्त-शिरोमणि का दर्जा दिया। मैं आपको यह बता रहा हूँ कि सन्त का अवतार किसी भी समय, और किसी भी जाति, और किसी भी देश में हो सकता है। सन्त का अवतार मनुष्य रूप में और उस समय के मुताबिक होता है। जब राजतन्त्र का युग था तो श्री रामचन्द्र जी राजा के घर पैदा हुए। मनु-शतरूपा को भगवान् ने नारायण के रूप में दर्शन दिया और कहा, "माँगो क्या माँगते हो?" दोनों ने कहा, "महाराज, हमें आप जैसा पुत्र चाहिए।" भगवान् ने कहा, "मेरे जैसा तो मैं ही हूँ। मैं ही पुत्र के रूप में आऊंगा लेकिन एक युग तक प्रतीक्षा करो। त्रेता में जब तुम दशरथ होगे और शतरूपा कौशल्या होगी, तब मैं तुम्हारे यहाँ जन्म लूंगा।" यह तो सतयुग की बात है। पर क्या आज के समय में कोई इतने लम्बे समय तक इन्तज़ार कर सकता है? आज तो न किसी के पास इतना समय है, न धैर्य है, न इतना लम्बा ध्यान लगा सकता है। इसलिए परमतत्त्व आधार मालिके कुल मनुष्य के रूप में सद्गुरु अवतार लेकर उस समय की परिस्थितियों के अनुकूल आपको आसान से आसान तरीक़ा बताता है। सद्गुरु कौन? सद्गुरु वह जो हर समय उसी परमतत्त्व में रहता है। जिसके सत्सग में ऐसा माहौल बन जाता है जिसमें उसकी वाणी सुनते-सुनते तुम्हारा मोह नष्ट हो जाता है। अगर ऐसा नहीं होता तो वह सद्गुरु पूर्णपुरुष नहीं है। अगर उसकी वाणी आपके हृदय और आत्मा को स्पर्श नहीं करती तो वह पूर्ण सत्पुरुष नहीं है। मालिक को मिलने का रास्ता प्रेम का रास्ता है। और प्रेम तभी हो सकता है जब मालिक मनुष्य रूप में अवतार लेता है। इसलिए तुलसीदास जी कहते हैं :—

'बन्दौं गुरु पद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर।।'

मैं उस गुरु के कमलवत् चरणों को नमस्कार करता हूँ जिनके बचन महा अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य की किरणों के समान हैं। सन्तमत की खासियत क्या है? यहाँ नवधा भक्ति है। वही भक्ति विदुरानी ने श्री कृष्ण के प्रति की। वही परमतत्त्व नर रूप में आता है। उसकी भक्ति हमें करनी है, और उसे परमतत्त्व मानकर करनी है। उसे परमतत्त्व मानकर भक्ति करने से तुम खुद परमतत्त्व हो जाओगे। अगर आप उसे शरीर या मन माने बैठे हैं तो आपने परमतत्त्व को नहीं पहिचाना। आपको अपने शरीर से प्यार है, मकान और धन से प्यार है, अपने मान-बड़ाई से प्यार है। अगर सद्गुरु को भी है तो वह सद्गुरु नहीं है :—

'न अपना नाम तुम रखना, न कोई भी निशाँ रखना।
नहीं की जब गई आदत, ज़बाँ पर तुम न हाँ रखना।।'

बड़ी-बड़ी इमारतों पर अपने नाम के पत्थर या बोर्ड लगाने से क्या हासिल? यह डूंगर सिंह महाराज कालेज है, यह सवाई मान सिंह कालेज है। कहाँ गये ये राजे-महाराजे? अगर सद्गुरु भी अपने डेरे, धाम, अपने नाम और चेलों में फँसा हुआ है, तो वह तुम्हें बन्धन से निकाल नहीं सकता। सच्ची बात तो यह है कि अगर आपको उस परमतत्त्व आदिकर्त्ता से मिलना है, जिससे मिले बगैर आपको सुख-आनन्द भले ही मिल जाये, पर शान्ति और पूर्णता हर्गिज़ नहीं मिल सकती। तो याद रखना कि गुरु को कभी भी मनुष्य मानकर उसके शरीर से प्यार न रखना। किसी भी स्थूल पदार्थ में प्यार नहीं रखना, क्योंकि सद्गुरु शरीर या स्थूल माद्दा तो है ही नहीं। यह तो सीधी-सादी

बात है। अगर तुम्हारा मोह किसी भी स्थूल चीज़ से है तो तुम्हारी आत्मा पर उसका बोझ आयेगा और तुम्हारी आत्मा ऊपर नहीं जा सकती, क्योंकि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण उसे नीचे को खींचेगा। वह हर्गिज़ ऊपर नहीं जा सकती। बड़ी ऊँची बात मैं कह रहा हूँ। वसिष्ठ ने राम को कहा, "राम, तुमने कष्ट भोगे, जंगलों में गये, तुमने गृहस्थ और राजा का धर्म निभाया लेकिन जब तक तुम गुरु के सम्पर्क में नहीं आते, तब तक तुम उस परमधाम को नहीं पहुँच सकते जहाँ से तुम आये हो।" अवतार का अवतारपना उभारने के लिए भी सद्गुरु के सम्पर्क में आना ज़रूरी होता है। अवतार ही अवतार को पहिचानता और उसके अवतार-पने को जगाता है। वसिष्ठ ने राम को कहा, "बेख्वाहिशी की ख्वाहिश करो; इस जगत् की किसी चीज़ की इच्छा न रखो। इस जगत् की हर वस्तु यहीं रह जायेगी क्योंकि यहाँ की हर चीज़ अपूर्ण है पर तू तो पूर्ण है :—

तू तो थी सतपुरुष की अंशी।
गोत लजाया शर्म न आई॥'

"अरे तुम तो परमतत्त्व अविनाशी हो, और नाशवान् जगत् की वस्तु में फँस गये! जिस परमतत्त्व आधार की एक बूंद से यह सारा जगत् बना है, उसके तुम उत्तराधिकारी हो; तुम उस मालिके कुल के पुत्र हो। तुम फकीर बनो। बेख्वाहिशी की ख्वाहिश करो। बेख्वाहिशी की ख्वाहिश करने वाले को मालिक सब कुछ दे देता है।"

राम ने कहा, "महाराज, बेख्वाहिशी की ख्वाहिश भी तो ख्वाहिश ही है। अनिच्छा की इच्छा भी तो इच्छा ही है!" इसीलिए तो हम कहते हैं :—

'मुक्ति की नहिं चाह मन में, भक्ति प्यारी लाग।
राधास्वामी की दया से, भाग्य पूरन जाग।"

भक्त बहुत विवेकवान् चतुर होता है। वह कहता है — मालिक, मुझे कुछ नहीं चाहिए, केवल आपकी भक्ति चाहिए। और वह सब कुछ ले लेता है। परम दयाल जी महाराज के पार्थिव शरीर में रहते हुए उन्हें किसी ने नहीं पहचाना कि वह परमतत्त्व के अवतार थे। सन्त अनेक हो सकते हैं, पर सद्गुरु वक्त एक होता है। और सद्गुरु वक्त को सद्गुरु वक्त ही बना जाता है, और पहचान कर बना जाता है। यह नहीं कि जिसे मर्ज़ी आवे, उसे दे जाता हो। परम दयाल जी महाराज के सद्गुरु दाता दयाल जी ने जब उन्हें जगाया और कहा :—

'तू तो आया नर देही में धर फकीर का भेसा।
दुःखी जीव को अंग लगाकर लेजा गुरु के देसा॥
तीन ताप से जीव दुःखी हैं, निबल अबल, अज्ञानी।
तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी॥

पहचान लिया उनको, और कहा कि तू तो नर के शरीर में अवतार आया है जगत् के अन्दर :—

'तेरा रूप है अद्भुत अचरज, तेरी उत्तम देही।
जग कल्याण जगत् में आया, परम दयाल सनेही॥'

सद्गुरु दाता दयाल जी ने उन्हें जगा दिया और चेता दिया। और परम दयाल जी ने उस अवस्था को पाने के बाद, साक्षात् राधास्वामी हो जाने के बाद, उन्होंने उस सच्चाई को जगह-जगह पर जाकर बयान किया। राधास्वामी मत निश्चित रूप से सनातन धर्म की आखिरी सीढ़ी है। राधास्वामी मत पर-अध्यात्म का मक्खन है जो उसी के पास है जिसने उसे चखा है, खाया है, और दूसरों को चखाने के लिए आया है। परम दयाल जी ने वह परा-अध्यात्म का मक्खन चखा और चखाया। परम दयाल जी महाराज में पिछले सन्त अवतारों के सभी गुण मौजूद थे

और इसके अलावा एक अपनी विशेषता थी परम दयालुता की। मैं यह क्यों कह रहा हूँ ? मैंने उन्हें पहचाना। मैं भी जीवन्मुक्त अवस्था में रहा करता था उनसे मिलने के पहले से ही। लेकिन जब से मैं उनके सम्पर्क में आया, और जब से उन्होंने उँगली मेरे ऊपर रख दी, 1959 में मैं जोधपुर में पढ़ाता था। तब मस्ती की हालत में रहता था, घंटों समाधि, ध्यान, प्रकाश और शब्द में रहता था। मालूम नहीं था कि प्रकाश-शब्द सन्तों का मार्ग है, लेकिन उसमें रहता था। उसी समय एक दृश्य आया जिसमें सफेद दाढ़ी वाले एक सन्त प्रकट हुए जिन्हें मैं जानता नहीं था। वे कहने लगे, "आई. सी. शर्मा, तू किसी खास मक़सद के लिए आया है और तू स्वयं को ही नहीं बल्कि दूसरे बन्धुओं को भी मुक्त करायेगा। तेरे ज़िम्मे ड्यूटी है। यह दृश्य आया और गया। उस समय मैं महाराजा कालेज में प्रोफेसर था। पी.एच., डी. किया, किताबें लिखीं, पढ़ाया भी और बहुत ख्याति अर्जित की। पर मेरे अन्दर में एक कुरेद थी उस मक़सद को पहचानने की जिसके लिए मैं संसार में आया हूँ। मैं 24 सितम्बर 1983 को दिल्ली में आया था। वहाँ हिन्दु महासभा भवन में महाराजजी का सत्संग चल रहा था। वहाँ मेरा बहनोई मुझे ले गया। और ज्यों ही मैं हाल में दाखिल हुआ दूर से ही उन्होंने मुझे देखकर पुकारा, "डाक्टर शर्मा तू आ गया ! मैं तेरी इन्तज़ार कर रहा था।" मुझे अपने पास बुला कर अपने बगल में बैठा लिया। और जब मैं महाराज जी के सम्पर्क में आया तो जो कुछ भी पहले मैंने प्राप्त किया था, उसकी पराकाष्ठा हो गई। मैं सद्गुरु की आज्ञा का पालन करता चला गया। मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि सद्गुरु जब मनुष्य के रूप में अवतार लेता है तो उससे सच्चा प्रेम करो, उसके साथ कोई

सम्बन्ध जोड़ लो। उसे पिता मान लो, भाई मान लो, उसे बेटा मान लो, उसे सखा मान लो। तब जाकर के उसकी पूर्णता के संस्कार से तुम भी पूर्ण हो जाओगे। वास्तव में तुम भी पूर्ण हो परमतत्त्व जो ऊपर बैठा हुआ है, वह तो पूर्ण से पूर्ण है। लेकिन हमारे लिए बेकार है। जब वह मनुष्य के चोले में आता है, हमारे लिए तभी वह पूर्ण है। पूरा गुरु कौन है ? मनुष्य के चोले में साक्षात् परमतत्त्व, जिसमें कोई ख्वाहिश नहीं, बेख्वाहिशी की ख्वाहिश जिसके अन्दर है। आम आदमी कहेगा कि बेख्वाहिशी की ख्वाहिश भी ख्वाहिश है लेकिन यह बात नहीं है। देखने में तो सद्गुरु भी आम आदमी की तरह लगता है, लेकिन उसमें बेख्वाहिशी की ख्वाहिश है। यह कैसे ? जैसे आपके हाथ में मैल लगा है। उस मैल को हटाने के लिए आपने साबुन लगाया और पानी से धोया तो साबुन तो धुल ही गया, साथ में मैल भी धुल गया। बेख्वाहिशी की ख्वाहिश ख्वाहिश नहीं होती, वह तो इन्सान को परमतत्त्व में मिला देती है, उसे फकीर बना देती है और फकीर साक्षात् मालिक होता है, मनुष्य के रूप में :—

'वन्दों गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर॥'

मनुष्य के रूप में जब हरि गुरु बनकर आया उसके कमलवत् चरणों में नमस्कार है क्योंकि वह संसाररूपी जल में रहता हुआ भी उससे अछूता रहता है इसलिए उसके चरणों में नमस्कार है। नमस्कार का मतलब है जितनी ख्वाहिशात हैं, सबको दिल से निकाल देना, अहंकार को निकाल देना, बिलकुल खाली हो जाना। और ज्यों ही तुम खाली हो जाओगे; त्यों ही सद्गुरु तुम्हें अपने आप से भर देगा। आपको पूर्ण बना देगा। पूर्ण कौन होता है ? जो

खाली होगा, वह पूर्ण किया जायेगा। मालिक जब नर के रूप में आता है तभी वह कृपा का सागर हो जाता है। हरि जब नर रूप में आता है तभी वह कृपासिन्धु होता है। क्योंकि वह जानता है कि नर का कष्ट क्या है, भूख क्या है। वह जानता है कि सत्संगियों का दर्द क्या है, और उनका प्रेम क्या है!

परम दयाल जी महाराज की बहू सरला मुझे लिखती है कि हम आपको पाकर के धन्य हैं। बाबा ने जो सबसे बड़ा उपकार हम पर किया है वह यही कि उन्होंने आपको हमें दिया है। इतना प्रेम है मेरे प्रति उनके पूरे परिवार का। परम दयाल जी महाराज की जो शताब्दी स्मारिका छप रही है, उसमें सरला ने तीन लेख दिये हैं। उसमें से एक आपको मैं बता रहा हूँ। वह लिखती है कि एक बार महाराज जी सत्संग के दौरे से आये थे। जब पदम जी भिलाई में रहते थे और पुराना मकान बदल कर नये मकान में आये थे। महाराज जी रात में 8 बजे के लगभग आये। उन्हें खाना खिलाया और सुला दिया। दस बजे के करीब कोई पच्चीस-तीस गँवार लोग लट्ठ लिये मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए आ गये। पूछने लगे—"पदम जी का मकान यही है?" हाँ साहब! बोले—"हम बड़ी मुश्किल से यहाँ पहुँचे हैं, हमें पता नहीं था। क्या महाराज जी यहाँ आये हुए हैं?" सरला बोली—"हाँ, आये हुए हैं।" वे बोले—"हम उनके दर्शन करना चाहते हैं।" महाराज जी सफर से थक कर आये थे और नींद में सो रहे थे, इसलिए सरला ने उन्हें जगाना उचित नहीं समझा। बोली, "वो थके हुए हैं, नींद में हैं। अब आप लोग कल आना।" मध्य प्रदेश से आये हुए वे गरीब लोग बोले, "हमारा यहाँ कोई ठिकाना नहीं है। हम कहाँ जायें?" सरला ने कहा, "हमारा मोटर

गेराज खाली पड़ा है, आप लोग इसमें सो जायें।" वे सब रात में वहीं सो रहे। प्रात: पाँच बजे जब महाराज जी उठे और अभी मुँह-हाथ भी नहीं धोया था सरला ने कहा, "महाराज कोई पच्चीस-तीस गँवार आपके दर्शनों के लिए आये हुए हैं।" महाराज ने तुरत पूछा, "कहाँ हैं वो?" "महाराज, वो लोग गेराज में सोये हुए हैं।" सर्दी का मौसम था, पर महाराज सुनते ही गेराज की तरफ बेतहाशा भागे, और उनके पीछे-पीछे सरला उनके गरम कपड़े लिए दौड़ रही थी—"महाराज कपड़े तो पहन लो! ठण्ड है। सर्दी लग जायेगी!" पर महाराज कच्छा और बनियान पहने सर्दी में ही भागे जा रहे हैं। भक्तों के प्रेम के वश भगवान् भागे जा रहे हैं। गेराज में पहुँचे। सरला पीछे-पीछे कपड़े लिए पहुँची तो देखा कि मोटर गेराज वह पहले का मोटर गेराज न था। वहाँ तो अगरु-चन्दन की सुगन्धि और फूल की पंखुड़ियों से गेराज गमक रहा था। गँवार लोग भोर में ही नहा-धो कर पुष्प-मालायें हाथ में लिए महाराज के दर्शन के प्यासे इन्तजार में खड़े थे। पहुँचते ही महाराज के गले में माला डाल, साष्टाँग प्रणाम किया। महाराज की आँखों से आँसू बह निकले। कहने लगे; "सरला! पदम! मैं इनकी क़दर करता हूँ। मैं इनके दिल के भीतर के दर्द को जानता हूँ। कभी मैं भी दाता दयाल जी के लिए इनकी ही तरह दीवाना था।" यह होता है सत्संगियों और सद्गुरु का प्यार :—

'कृपा सिंधु नर रूप हरि।'

नर के रूप में आकर ही हरि कृपासिन्धु होता है। मैं धन्यवाद देता हूँ मालिक को कि मैं बड़े ही सम्पन्न घराने में पैदा हुआ। पिता जी विख्यात शिक्षक थे। पन्द्रह सौ रुपये महीने की आमदनी थी लेकिन अचानक मकान

की सीढ़ियों से गिरे, सिर में गम्भीर चोट आई और स्मृति-शक्ति जाती रही और उनके उपचार में हम ग़रीब हो गये। बहुत अच्छा हुआ। मालिक को लाख-लाख धन्यवाद है। अगर मैं गरीबी की अवस्था से न गुज़रता तो सत्संगियों के दर्द को नहीं पहचान सकता। सद्गुरु जान-बूझ कर ऐसे कर्म लेकर आता है। तभी नर-रूप में वह कृपा का सागर होता है। तभी सद्गुरु के कमलवत् चरणों को नमस्कार है। क्यों ? सद्गुरु की पहचान क्या है :—

'महामोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर।'

जिसके सत्संग के वचन सुनने से मोह का बादल जो हमारे अन्दर छाया हुआ है वह छिन्न-भिन्न हो जाता है और ज्ञान का सूर्य चमकने लगता है। यह है सद्गुरु की पहचान और यह है सद्गुरु का काम। युग-युग में सद्गुरु अवतार हुए, होते रहे हैं, और समय तथा परिस्थितियों के अनुसार कानून बनाया। जैसे सतयुग में ध्यान का नियम था, त्रेता में यज्ञ का नियम हुआ, लेकिन आज उनकी ज़रूरत नहीं है। द्वापर की भक्ति-पूजा भी बहुत अच्छी थी। लेकिन आज जब दुःखी बहुत हैं और दुःखों की भी सीमा नहीं है तब कहा गया :—

'दुःखी जीव को अंग लगाकर ले जा गुरु के देसा।'

जीवों के दुःख से दुःखित होकर परमतत्त्व मनुष्य रूप में अवतार लेता है और वह अपनी दया को बिन माँगे बहा देता है, इसलिए वह परम दयाल है। वह निर्बन्ध पुरुष बँधुआ बनकर आया और बँधुए जीवों को छुड़ाया और ऐसा रास्ता बताया जिसके अन्दर सभी मार्ग मौजूद हैं। आज शब्द-योग की ज़रूरत है क्योंकि दुःखी जीव असंख्य हैं और एक ही सद्गुरु को उन सभी दुःखी जीवों को छुड़ाकर शब्द-जहाज़ के ज़रिये भवसिन्धु से पार ले जाना है। आज

जीवों को यह बतलाने की ज़रूरत है कि जिस रंग-रूप-रेखा को तुम मालिक माने बैठे हुए हो, वह मालिक नहीं है, मालिक तो उन सबसे ऊपर, सब से अलग है। वह ब्रह्मा, विष्णु और शिव से ऊपर है। अगर मुसलमानों या अंग्रेज़ों के राज्य में इस भेद को खोलकर कहा गया होता तो कहने वाले को प्राण-दण्ड दिया जाता, जैसे कबीर साहिब के साथ किया गया। पर आज अपना राज्य है इसलिए परम दयाल जी ने इस भेद को खोल दिया। और आज केवल सत्संग के द्वारा ही लाखों-करोड़ों जीव भवसागर के पार चले जायेंगे। सत्संग के लिए आज उपयुक्त अवसर है :—

जमीं बदलती है, आसमाँ बदलता है,
मकीं मकाँ जो बदले समाँ बदलता है।
नहीं है एक बतीरा पे यह जहाँ कायम,
बदलते रहते हैं सब जब जहाँ बदलता है॥

सन्त सदगुरु वक्त अपने अंशों को लेकर आता है। बात एक ही है, तर्ज-बयाँ और है। वही परम दयाल फकीर नये तर्ज-बयाँ के साथ मानव दयाल है। अंश बदले हुए हैं लेकिन सच्चाई वही है। पर नज़दीक रहने वाले नहीं पहचानते। परमतत्त्व आधार हमेशा समय के मुताबिक काम करता है। अपने लिए नहीं करता। अब भण्डारी नहीं रहीं, तो उसकी जगह साधना आ गई। गोपाल दास की जगह पवन आ गया। मामचन्द नहीं रहे तो शब्दानन्द आ गया। बात तो वही है। आपने पिछली बार अनुभव किया। सत्संग के अन्दर माहौल बदल जाता है और बैठे-बिठाये आपको उससे सम्पर्क हो जाता है। एक ही तरीक़ा सब के लिए नहीं है। सुमिरन, ध्यान, भजन भी सबके लिए नहीं है। अरे बिना सुमिरन, ध्यान, भजन के भी पहुँच जाओगे। गुरु बन्द डिब्बे में ले जायेगा। सत्संग में आपके पर्दे-दर-पर्दे हटाता जा रहा है सद्गुरु आया और एकदम एक वार आप चमक उठोगे।

सत्संग सबसे बड़ी चीज़ है। और पूरा सद्गुरु वह है जो खुद अनुभव करने के बाद उसे सबको बाँटता है। यही पाबन्दी महाराज जी ने आखिर में मुझ पर लगा दी और कहा कि, "देखो, तुम जीवन्मुक्त अवस्था में बेशक हो लेकिन विदेह-मुक्ति चश्मे वाहदत है लेकिन चश्मे वाहदत से भी आगे जो अवस्था मेरी इस वक्त है (पिट्सवर्ग हस्पताल में), वह अवस्था जिसमें मुझे अब कुछ करने-धरने की आवश्यकता नहीं है :—

'माला फेरूँ न हरि भजूँ, मुख से कहूँ न राम।
मेरा राम मुझको भजे, तब पाऊँ विश्राम ॥'

"मानव, यह अवस्था तेरी भी आयेगी, लेकिन उससे पहले तुझे सत्संगियों की सेवा का महान् कार्य करना होगा।" सेवा क्या है ? अनुभव को बाँटना।

यह किताबी ज्ञान नहीं, बल्कि अनुभव को बाँटा जा रहा है। यह अमृत की धारा बहाई जा रही है जो ऊपर से आ रही है, जो मैं सहन नहीं कर पाता। अपने अन्दर रख नहीं सकता। यह आज्ञा महाराज जी की मेरे लिए थी और आज्ञा का पालन करते हुए मैं आपके यहाँ आया हूँ।

कई तरीक़े हैं। विशिष्टाद्वैत का तरीक़ा है। और रामानुजाचार्य वाले मन्दिरों में जाकर भक्ति करें। राजयोग का तरीक़ा है। हठयोग है, कर्मयोग है, भक्तियोग है, सहज-योग है लेकिन इन सब योगों में आखिर में लोग कहते हैं—'तमगोचरम्'। उस परमतत्त्व को जानने की कोशिश करते हैं लेकिन वह मालिक फिर भी नहीं पहचाना जा सकता पूरी तरह से :—

'गोविन्दं परमानन्दं सद्गुरुं प्रणतोऽस्म्यहम्।'

सद्गुरु की महिमा कहाँ तक कही जाये। सनातन धर्म और सन्तमत में कहाँ टकराव है ? कहीं भी तो नहीं।

सन्तमत सनातन धर्म की अन्तिम सीढ़ी है :--

'ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः ।'

ध्यान योग को सरल बना दिया ।

'मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यम् ।'

यज्ञ की कठिनाई को सरल कर दिया ।

परमतत्त्वाधार मालिक ने सन्त अवतार लेकर सहज रीति बता दी कि प्रेम करो, और कुछ मत करो । गृहस्थ में रहने वालो, गृहस्थी बने रहो । जिस उद्योग-कर्म में लगे हो, उसी में लगे रहो । और तुम्हें ज्ञान तो क्या साक्षात्कार भी हो जायेगा, अगर सत्संग करते रहोगे तो । जो शब्दाभ्यास करता है और कहता है कि मैं शब्द में रहता हूँ, वह भी भूला हुआ है । सत्संग में आपको सहज ही रास्ता मिल जायेगा । यह बिलकुल सच्ची बात है । सद्गुरु तुम्हारा निदान करता है और तुम्हें तुम्हारी प्रकृति और स्थिति के मुताबिक सलाह देता है । इसलिए सद्गुरु जैसा कहता है, वैसा करोगे तो बच जाओगे ।

'मंत्रमूलम् गुरोर्वाक्यं ।'

गुरु जो कहे वही यज्ञ है ।

'पूजामूलं गुरोः पदम् ।'

गुरु के चरणों पर झुक जाना ही पूजा है । ज्यों झुका नहीं कि मालिक उसके अन्दर आ जायेगा । यह सत्संग की महिमा है :--

'गोविन्दं परमानन्दं सद्गुरुं प्रणतोऽस्म्यहम् ।'

सन्तमत या राधास्वामी मत के अन्दर सभी तत्त्व मौजूद हैं । ध्यान, पूजा, यज्ञ, मन्त्र सब कुछ है, लेकिन उसे समय-परिस्थिति के अनुसार आसान बना दिया गया है । राधास्वामी मत किसी का खण्डन नहीं करता ।

और जब आदमी इस अवस्था में पहुँच जाता है तो

ऐसे होता है सद्गुरु :--

भरोसा तेरा है तेरी आस मन में।
लगा रहता हूँ तेरे सुमिरन भजन में ।।
यही है जतन और यही काम मेरा।
जपा करता हूँ रात दिन नाम तेरा ।।
तेरी मौज में रह करके निसदिन सुखी हूँ।
नहीं भय न चिन्ता न जग से दुःखी हूँ ।।
खुली आँख से तेरा दर्शन जो पाया।
मिटे सहज में भाव मद मोह माया ।।
न जोगी न साधु न ज्ञानी बना मैं।
न भोगी असाधु न मानी बना मैं ।।
जो था पहले अब भी वही रूप मेरा।
न व्यापा मुझे काल का हेरा फेरा ।।
न जागा न सोया न सुषुप्ति में आया।
न आसा निरासा के भय ने सताया ।।
न दौड़ा न बैठा न लेटा कभी मैं।
न माता पिता और न बेटा कभी मैं ।।
नहीं ब्रह्म माया का है द्वन्द मुझको।
न उलझा सका कर्म का फन्द मुझको ।।
सहज रूप है और सहज कर्म बानी।
सहज में सहज की सहज हो निशानी ।।
गुरु राधास्वामी ने आकर बताया।
मेरा रूप मुझको सहज में लखाया ।।

तो यह शब्द इसलिए मैंने पढ़वाया आपको बताने के लिए कि सन्तमत कितना सहज है, कितना आसान है। सबसे ज्यादा जरूरत है सत्संग की क्यों :--

आ गये सतसंग में तो संग सत का हो गया।
दुरमति जाती रही और गुरु के सत का हो गया ।।

सत्संग में आने से सत्पुरुष का जो असली रूप है जो उसका सत् का आधार है उसके सम्पर्क में आने से आप वैसे ही हो जाते हैं। वह प्रेम का मार्ग है और प्रेम में दो चीज़ें हैं। एक यह है कि जिससे प्रेम करते हैं उसके प्रेम के अन्दर अपने को खो देते हैं। इष्ट होता है। हर एक भक्ति-मार्ग के अन्दर इष्ट होता है जिसे हम चाहते हैं। किसी को बनाओ। राम को बनाओ। अरे मीरा ने पत्थर को इष्ट बनाया उसी में परमतत्त्व में विलीन हो गई। जीते-जागते सत्पुरुष को अगर तुम इष्ट बनाओगे क्या नहीं होगा। जब उसने इष्ट माना इष्ट के बाद जाप, हर वक्त उसी का ध्यान, उसी की बात। खाना खाओ तो उसी के लिए, पानी पीओ तो राधास्वामी के लिए। बच्चे मेरे लिए राधास्वामी कहें। ये सब उसी परमतत्त्व के हैं। जब यह बात आपके अन्दर होगी तब आपका प्यार सच्चा होगा। इष्ट कब बनेगा ? जब लगातार उसी का ध्यान होगा :—

भरोसा तेरा और तेरी आस मन में।
लगा रहता हूँ तेरे सुमिरन भजन में ॥

क्या आपको उसका भरोसा है ? आपको उसका भरोसा नहीं हुआ, बात तो यह है। जब तक आपके अन्दर अहंकार है जब तक आपके अन्दर यह है कि मैं हिन्दु हूँ, मैं सनातनी हूँ, मैं फलानी जात का हूँ :—

'भरोसा तेरा है तेरी आस मन में।
लगा रहता हूँ तेरे सुमिरन भजन में ॥'

जो कुछ करो उसी के लिए हो भी रहा। है इतना लगाओ, इतना लगाओ अपने को अपने इष्ट में कि हरवक्त उसी के सिवा कुछ दिखाई न दे। यह जात दूसरी अवस्था है। उसके साथ प्रेम पक्का हो जाता है। सब जगह उसी को देखने लगता है। मजनू का प्यार लैला से था। कहते

हैं मजनू की सब तारीफ करते हैं उसका सच्चा प्यार था। हालाँ कि लैला का मतलब काला होता है। लैला काली थी लेकिन किसी ने कहा कि मजनू तेरी लैला काली है तो मजनू ने कहा तेरी अँखियाँ देखने वाली नहीं हैं। तुम पहिचान नहीं सकते सद्गुरु को। तुम उसको मनुष्य समझे बैठे हो। जो पहचानता है वही प्यार कर सकता है। उसके मन में वही बसी हुई थी। शंकर जो हैं तामसिक होने के कारण उनका रंग काला होना चाहिए। विष्णु सात्विक होने के कारण उनका रंग गोरा होना चाहिए। विष्णु की मूर्ति काली बनाई जाती है शिव की मूर्ति गोरी बनाई जाती है क्योंकि सफेद रंग वाले विष्णु का ध्यान करते-करते शंकर सफेद हो गये और विष्णु, शंकर का ध्यान करते-करते काले। अरे ऐसा प्यार करो सद्गुरु से कि तुम सद्गुरु हो जाओ। मजनू के देश में दो आदमी आपस में लड़े। मुकद्मा करने लगे। ज़मीन का झगड़ा था। दोनों कह रहे थे यह मेरी ज़मीन है, यह मेरी। उन्होंने सोचा मुकद्मा करें वकील पैसे खा जायेंगे। उन्होंने सोचा भाई मजनू सच्चा आदमी है प्रेमी है उसी के पास चलते हैं, वही फैसला करेगा। वे दोनों मजनू के पास गये और कहा भाई हमारा फैसला कर दो। मजनू ने कहा कहो भई! जब उन्होंने अपने कागज़ात पेश किये, जवाब पेश किये दोनों ने कहा—इस पर मेरे दादा जी खेती किया करते थे। ये हुआ तो वो सब की बातें सुनता रहा मजनू और सुनकर कहने लगा—भई ज़मीन न तेरी न मेरी ज़मीन तो लैला की है। तो तुम अगर सद्गुरु के हो तो :—

'तू हुआ मेरा तो मैं भी देख तेरा हो गया।'

पहले उसके बनो :—

'यही है जतन और यही काम मेरा।
जपा करता हूँ रात दिन नाम तेरा ।।'

जब यह हालत होती है भक्त की तब आखिर में जाकर भक्त, भक्त नहीं रहता, भगवान् भगवान् नहीं रहता। गुरु गुरु नहीं रहता। एक दूसरे में समा जाता है और सहज में यह मार्ग सहज समाधि का है। हाँ आपको नाम दान देंगे हम। महाराज जी नहीं दिया करते थे। मुझे हुक्म है देने का। आप सत्संग सुनो। सत्संग सुनने के बाद जब तुम अन्दर जाओगे फिर इन दर्जों को भी छोड़ दोगे। अरे शब्द की ख्वाहिश भी ख्वाहिश जैसी नहीं रहती लेकिन पहले आप सत्संग सुनो और मेरे जैसे बनने की कोशिश करो इसीलिए सत्संग दिया जाता है। इष्ट, इष्ट के बाद जाप और फिर उससे ऐसा प्रेम करो, ऐसा प्रेम करो कि शिष्य शिष्य न रहे, गुरु गुरु न रहे और तुम्हें अनुभव हो जाये :--

'सहज में सहज की सहज है निशानी।'

सत्संग के अन्दर सिर्फ सहज में आपको बैठे-बिठाये मिल जायेगा :—

'खुली आँख से तेरा दर्शन जो पाया।
मिटे सहज में मान मद मोह माया ।।'

तुम कहते हो मान को मारो, मद को मारो। अरे जब बैठे हुए तुम्हारी आँख खुल जायेगी तुम सद्गुरु को अपने में देखोगे, अपने में। सद्गुरु को सत्संग में आने से अपने मद, मोह मरते नहीं हैं उनका रूप बदल जाता है और वे मालिक की तरफ चले जाते हैं। बस, दुनिया का भी काम होता रहता है। लोक भी बन जाता है और परलोक भी। इसलिए सत्संग में आना जरूरी है। और जो पहुँचा हुआ है उसके लिए भी सत्संग में आना जरूरी है। सन्त के लिए जरूरी है सद्गुरु वक्त के सत्संग में

आना। इतनी बात कहना चाहता था आज के सत्संग में और अब मैं कल भीलवाड़ा के सत्संग में जा रहा हूँ। समय कम है इसलिए ज़्यादा समय नहीं दे सका। उसके बहुत से कारण हैं जुलाई, अगस्त में पंजाब में कर्फ्यू लग जाने के कारण बाहर नहीं निकल सका। दिसम्बर के अन्दर किसी दुःखिया के लिए हमें अमेरिका जाना पड़ा इसलिए प्रोग्राम नहीं बन सका। अगली बार आप फिर सत्संग सुनते रहें और सहज में आपका काम बन जायेगा; मगर बात इतनी है कि सहज में हम काम बनाने की बात कर रहे हैं आपसे पैसा लेते नहीं हैं। दान देना बहुत ज़रूरी है। दान देने से मन पवित्र होता है। हम मन्दिर के लिए कुछ नहीं माँगते। उसका खर्चा चार-पाँच लाख रुपये का आता है और आपको सब कुछ मुफ्त में देते हैं। हस्पताल भी चल रहा है। क्लीनिक भी खुला है नया जिसमें मुफ्त में बड़ा भारी डा. के. के. शर्मा आता है। तो हमें तो पैसे की ज़रूरत नहीं है। हम अपनी पेंशन पर निर्भर रहते हैं। हमारे सन्तमत का नियम है, महाराज जी का कि सन्त जो सद्गुरु वक्त है जो अपने अनुभव देता है उसे पैसे के लिए ज़रूरत नहीं इसलिए उसे अपनी रोज़ी खुद कमानी चाहिए। मेरे लिए नहीं लेकिन दान देना जो है बो बहुत ज़रूरी है। क्यों ? उससे मन साफ होगा और जब मन साफ होगा तब सुमिरन, भजन काम आयेगा। मन साफ नहीं तो किसी का जाप करो कोई लाभ नहीं। जब सत्संग में जाते हैं तो कुछ न कुछ भेंट एक पैसा ही क्यों न हो ले जाते हैं ऐसा नियम है। एक पैसे की ज़रूरत नहीं लेकिन सन्त के पास खाली नहीं जाते। खाली हाथ जाते हैं तो खाली हाथ आते हैं। विदेशों में मुफ्त चीज़ की वुक्कत नहीं है। जहाँ पैसा लगा रहता लोग वहाँ जाते हैं। लोग चाहते हैं कि हमें ठगा जाये। हम आपको ठगेंगे

नहीं। मैंने मन साफ होने के लिए दान करना बताया। बस मैं सच्चे दिल से सद्भावना देता हूँ। इस बार मैं ज़्यादा समय नहीं दे सका क्योंकि मुझे विदेश में जाना है और वो भी बहुत प्यासे हैं महाराज जी जहाँ-जहाँ जाया करते थे। आगे ज़्यादा समय दिया जायेगा और आपको धीरे-धीरे ज्ञान हो जायेगा। बस, इन शब्दों के साथ मैं सत्संग समाप्त करता हूँ। आप सभी को दिली आशीर्वाद!

आपका फकीरमय
मानव

आवश्यक सूचना

सत्संगी जन को सूचित किया जाता है कि परमसन्त परम मानव हजूर मानव दयाल डा. आई. सी. शर्मा जी महाराज दिनांक 20-4-87 को दो माह की अपनी विदेश-यात्रा पर प्रस्थान कर रहे हैं। अब हजूर महाराज जी 21 जून '87 को होशियारपुर वापिस लौटेंगे। अत: सभी भाई-बहनों से निवेदन है कि 21-6-87 तक हजूर महाराज जी को होशियारपुर के पते पर पत्र न लिखें और न ही अमेरिका के पते पर अनावश्यक पत्राचार करने का कष्ट करें क्योंकि हजूर महाराज जी दौरे के सिलसिले में किसी स्थान पर अधिक समय नहीं रुकेंगे।

जनरल सेक्रेटरी

मासिक सन्देश

परमसन्त हजूर मानव दयाल

डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरे परम प्रिय सत्संगियो !

राधास्वामी; परम दयाल जी सहाई !

पिछले मासिक सन्देश में सत्संग के दौरे के बारे में कोई सूचना इसलिए नहीं दी गई थी क्योंकि वह सन्देश वैसाखी का विशेष सन्देश था। मैंने आपको बताया था कि हम 20 जनवरी को चण्डीगढ़ से होते हुए देहली पहुँचे। 22 जनवरी को हम दक्षिण के दौरे के लिए रवाना होकर 23 को बलाडशाह पहुँचे। यहाँ पर अन्तर्राष्ट्रीय मानवता परिषद् अहेरी के संस्थापक श्री कमलेश्वर राव, अहेरी के श्री विलास और उनके साथी स्वागत के लिए पहुँचे हुए थे। याद रहे कि अहेरी महाराष्ट्र में 1984 में श्री कमलेश्वर राव के प्रयास से अन्तर्राष्ट्रीय मानवता परिषद् के केन्द्र का शुभारम्भ हुआ था और मैं स्वयं इस अवसर पर श्री एस.एल. सेठी के साथ अहेरी गया था। अहेरी महाराष्ट्र का एक छोटा सा नगर है, जिसकी आबादी दस-बारह हज़ार के लगभग है। जैसा कि मैंने पहले भी बताया था कि यहाँ के सत्संगी बड़े श्रद्धालु और उत्साही हैं। जब भी हम अहेरी जाते हैं तो अहेरी से दो-तीन किलोमीटर की दूरी पर सैकड़ों

सत्संगी स्वागत के लिए आ जाते हैं और एक विशाल जन-समूह हमारे आगे-२ चलता है। इस सम्बन्ध में मैं आगे चलकर व्याख्या करूंगा।

हम अहेरी में 23 जनवरी सायंकाल पहुँच गये थे। हमारे साथ श्री त्रिलोक चन्द और उनकी पत्नी श्रीमती चन्द्रा चण्डीगढ़ से इस अवसर पर सम्मिलित होने के लिए आये थे। श्रीमती चन्द्रा ने जब भव्य स्वागत देखा तो उनकी आँखों में आँसू आ गये। इस अवसर पर मेरे साथ बटाला के डा० चन्द्र नरेश नेगी और मानवता मन्दिर से श्री पवन कुमार और श्री शब्दानन्द भी थे। पिछले वर्ष भी हम अहेरी गये थे। उस समय श्री एस एल. सेठी, भाग्य माता जी, श्री के. पी. वर्मा, कुमारी साधना सक्सेना और श्री शब्दानन्द मेरे साथ थे। उसी वर्ष अहेरी के महाराजा के पौत्र श्री धर्म राव ने 25 सौ वर्गगज़ भूमि इस केन्द्र के भवन निर्माण के लिए अनुदान दी थी। मैंने उसी समय भवन का शिलान्यास भी किया था। इस बार भी पहले की भाँति अहेरी निवासियों ने हज़ारों की संख्या में सत्संगों में भाग लिया। हमारे सत्संग स्थल पर पहुँचने पर मराठी भाषा में स्कूल की बालिकाओं ने स्वागतगान गाया।

उस रात्रि को हमने विश्राम किया। 24, 25 और 26 जनवरी को प्रातः और सायं सत्संगों का सिलसिला चलता रहा। इन सत्संगों का समय कुल मिलाकर 28 घण्टे रहा। सभी सत्संगों को रिकार्ड किया गया है और उन्हें धीरे-धीरे प्रकाशित करा दिया जायेगा। मुझे कुछ ज्ञान नहीं कि मैंने इन सत्संगों में क्या कहा मैं स्वयं अनायास ही सत्संग के धाराप्रवाह में बह जाता था। उसका कारण सत्संगियों का प्रेम, उनकी श्रद्धा और उनकी सत्संग सुनने की लगन ही है। हर सत्संग में सत्संगियों के मन की भावनाएँ मेरे मन को छू जाती हैं और

हर सत्संग निराले ढंग का हो जाता है। मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि सत्संग समाप्त होने पर मुझे तो एक विशेष प्रकार की शान्ति मिलती ही है किन्तु उसके साथ ही साथ प्रायः सभी सत्संगी यह महसूस करते हैं कि उनकी सभी शंकाओं का निवारण हो गया है। 27 जनवरी को हम सायंकाल चन्द्रपुर पहुँचे वहाँ पर एक प्रिय सत्संगी जो भारतीय स्टेट बैंक के मैनेजर हैं, के घर में कुछ समय के लिए ठहरे। रात्रि को बल्लिशाह स्टेशन से सिकन्द्राबाद के लिए रवाना हो गये।

हम 28 जनवरी को सिकन्द्राबाद पहुँचे और हजूर आनन्दराव जी महाराज के केन्द्र A.O.C. गेट सिकन्द्राबाद पर पहुँच गये। आनन्दराव जी महाराज ने हमारे ठहरने का और भोजन का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध किया हुआ था और उन्होंने सिकन्द्राबाद और हैदराबाद में हर वर्ष की भाँति 31 जनवरी 1987 तक सत्संगों का आयोजन किया हुआ था। A.O.C. गेट पर चिन्तल बस्ती में और चार-कमान में विशाल सत्संग हुए। सत्संगियों की संख्या पहले से बहुत अधिक थी। दूर-२ से सत्संगी 27 जनवरी से ही सिकन्द्राबाद पहुँच गये थे। यहाँ पर हर वर्ष कोई न कोई नये सत्संगी नामदान लेने के लिए दूर-दूर से आ जाते हैं। इस बार भी कुछ सत्संगी इस मकसद के लिए आये। उनमें से एक व्यक्ति का नाम यहाँ पर देना बहुत लाभदायक रहेगा। हालाँकि यह घटना हमारे हनमकुण्डा को रवाना होने से एक दिन पहले घटी फिर भी मैं आपकी रुचि के लिए इसे यहीं बताना चाहता हूँ।

इस विशेष नये सत्संगी का नाम डा. गंगा मालेश्वर है। यह महानुभाव आदिलाबाद जिले के निर्मल गाँव के रहने वाले हैं और वहीं आयुर्वेदिक पद्धति से असाध्य रोगों

का इलाज भी करते हैं। डा. गंगा मालेश्वर को बचपन से ही सिद्धि प्राप्त है और उनकी ये सिद्धियाँ उनके पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण हैं। उनके हाथों में Radiation है। वह किसी भी झाड़ी के पत्तों को मसल कर रोगी के शरीर पर लगाकर उसकी पीड़ा को तुरन्त दूर कर सकते हैं। उन्होंने हृदय के रोगग्रस्त रोगियों का ऐसा सफल इलाज किया है कि हृदय के रोगग्रस्त होने के बाद भी रोगी पूर्णतया स्वस्थ हो जाता है। इसी प्रकार डा. गंगा मालेश्वर पक्षाघात यानि कि अधरंग की बीमारी को हमेशा के लिए दूर कर देता है। उन्होंने अपने जीवन में कई चमत्कारी अनुभव किये हैं उन्होंने भगवद्गीता आदि आध्यात्मिक पुस्तकों का अध्ययन भी किया है और कई वर्षों तक योगाभ्यास भी किया है। किन्तु इन सब बातों के होते हुए भी उनके मन में यह इच्छा बनी रही कि वह अपने जीवन में सद्गुरु से भेंट करें और नामदान प्राप्त करें। मुझे उनकी इस इच्छा का कोई ज्ञान नहीं था। पहली फरवरी को जब हम हनमकुण्डा जाने की तैयारी कर रहे थे, डा. गंगा मालेश्वर अपने गाँव से A.O.C. गेट सिकन्द्राबाद केन्द्र पर पहुँचे। उन्होंने "सिद्ध सत्पुरुष फकीर बाबा-चमत्कारों से परे" की पुस्तक के तेलुगु अनुवाद को पढ़ने के बाद मन में प्रतिज्ञा की कि वह मुझ अवश्य मिलने के लिए आयें। इसलिए केन्द्र पर पहुँचते ही उन्होंने मेरे से सम्पर्क किया।

उन्होंने मुझसे कहा, "महाराज! मैं केवल आपको मिलने के लिए और आपसे दीक्षा लेने के लिए ही यहाँ आया हूँ। मैं बचपन से मालिक की खोज में हूँ। मैं एक सफल डाक्टर हूँ और कई असाध्य रोगों का इलाज कर सकता हूँ। मैंने भगवद्गीता पढ़ी है और योग शास्त्र भी पढ़े हैं। मुझे अनेक चमत्कारी अनुभव हुए हैं और अब

भी हो रहे हैं। जब मैं किसी मृतक व्यक्ति की समाधि पर बैठता हूँ तो वह मेरे सामने प्रकट हो जाता है। मैं योगाभ्यास भी करता हूँ। बहुत समय से मैं यह प्रबल इच्छा रखता था कि मुझे मेरे सद्गुरु मिल जायें। एक महीना पहले मैंने आपकी पुस्तक "सिद्ध पुरुष फकीर बाबा—चमत्कारों से परे" का तेलुगु भाषा में अनुवाद पढ़ा। उसको पढ़ते ही मुझे पूरा विश्वास हो गया कि आप ही मेरे सद्गुरु हो सकते हैं। इसलिए मैं आपसे नामदान लेने के लिए हाज़िर हुआ।"

मैंने डा. गंगा मालेश्वर की परीक्षा लेने के लिए कहा; "डा. साहिब मैं कल प्रातः हनमकुण्डा जा रहा हूँ। वहाँ पाँच दिन ठहरूंगा। अगर आप वहाँ आ सकें और सत्संग सुन सकें तो मैं आपको नामदान दे दूंगा। डा. गंगामालेश्वर ने कहा कि वह अपने गाँव जाने के बाद तुरन्त हनमकुण्डा आ जायेंगे। ऐसा ही हुआ। हनमकुण्डा में पहले दिन का सत्संग सुनने के बाद डा. गंगा मालेश्वर को मैंने दूसरे दिन प्रातःकाल पाँच बजे अपने कमरे में बुलाया। ज्यों ही मैंने उन्हें आँखें बन्द करने को कहा और उनके मस्तक पर हाथ रखकर उन्हें "राधास्वामी" नाम का अजपाजाप करने को कहा, उनकी तुरन्त गहरी समाधि लग गई जो एक घण्टे से अधिक समय तक रही। जब तक वह हनमकुण्डा में मेरे साथ रहे वह प्रातःकाल सैर करने के लिए भी सम्मिलित हुआ करते थे। इस प्रकार उनसे मेरी अच्छी घनिष्ठता हो गई। मैं यह सारी व्याख्या इसलिए दे रहा हूँ ताकि आपको इस बात का ज्ञान हो जाये कि संकल्प और विचार में बहुत शक्ति है। यह तो ठीक है कि सद्गुरु का मिलना प्रारब्ध-कर्मों पर निर्भर होता है। किन्तु उन प्रारब्धकर्मों को जगाने के लिए जिज्ञासु के मन में सद्गुरु को मिलने की प्रबल इच्छा होनी चाहिए। "जहाँ चाह तहाँ राह।"

जैसे मैंने पहले आपको बताया है कि दक्षिण के हर दौरे पर कुछ न कुछ नये सत्संगी हर वर्ष मेरे निकट आ जाते हैं। इस बार के दौरे में श्री गंगा मालेश्वर के अलावा युवा पीढ़ी के तीन व्यक्ति मेरे बहुत निकट आये। उनके नाम श्री ओम प्रकाश, सुश्री ज्ञान और सुश्री कल्पना हैं। इन सबने सैकड़ों दूसरे सत्संगियों के साथ तीन दिन लगातार सत्संग सुने। वास्तव में सत्संगियों की संख्या किसी-किसी दिन हज़ारों तक पहुँच जाती थी। सभी सत्संगों की भाँति हनमकुण्डा के सत्संग भी बहुत प्रभावशाली रहे जिसमें सत्संगी आनन्द के सागर में डूब जाते थे।

जब हम 6 फरवरी को हनमकुण्डा सत्संग भवन से श्री नरसिंह व्यास की कार में बैठकर रवाना हो रहे थे, तो बहुत से सत्संगी आशीर्वाद लेकर भावुकतापूर्ण मुद्रा में बाहर खड़े रहे। उनके चेहरों से पता चलता था कि उन्हें बिछोड़े का कटु अनुभव हो रहा था। यहाँ पर मैं आपको यह बताना भूल गया कि श्री नरसिंह व्यास जो हैदराबाद के श्री मदन लाल व्यास का ज्येष्ठ सुपुत्र है, हर वर्ष हमारी सेवा करता है। इस बार नरसिंह का छोटा भाई नन्दू चालक के रूप में हमारे साथ रहा। सारा व्यास परिवार हमारे साथ बड़ी श्रद्धा के साथ जुड़ा हुआ है। हर वर्ष हैदराबाद में शहर के सत्संग के बाद इस व्यास परिवार के घर पर दोपहर का भोजन और विश्राम होता है। नरसिंह की माता मैना का अगाध विश्वास है। इस दौरे पर पहली बार व्यास के घर पर सत्संग भी हुआ।

जैसा कि मैंने पहले बताया है कि हनमकुण्डा के बहुत से सत्संगी जो श्री नन्दू भाई जी से दीक्षित हैं मेरे बहुत निकट आ गये हैं। उनमें से एक महिला पिछले तीन वर्ष से अपनी साधना के बारे में मुझसे मार्गदर्शन लिया करती

हैं। मैंने उन्हें परमसन्त श्री नन्दूभाई जी की मूर्ति पर ध्यान लगाने को कहा था। उनका यह कहना है कि उनकी समाधि में नन्दूभाई जी का रूप मेरे रूप में और मेरा रूप उनके रूप में बदल जाता है। मैंने कई बार सत्संगों में भी कहा है कि गुरु एक है और वह परमतत्त्व है। सन्तमत में जीवित सद्गुरु के रूप पर ध्यान लगाना इसलिए ज़रूरी है क्योंकि वह आपकी शंकाओं को दूर कर सकता है। ख़ासकर जब एक सच्चा सद्गुरु वक्त अपने जीवन काल में दूसरे सच्चे सद्गुरु वक्त का चुनाव करके अपना कार्यभार उसको सौंप देता है और शरीर छोड़ देता है, तो जीवित सद्गुरु वक्त में न ही सिर्फ उसके गुरु की सभी शक्तियाँ और सभी प्रवृत्तियाँ जीवित सद्गुरु वक्त में प्रवेश कर जाती हैं बल्कि आदिकाल से लेकर आज तक जितने सद्गुरु वक्त हुए हैं उनके संस्कार भी वर्तमान सद्गुरु वक्त में मौजूद होते हैं।

इस सच्चाई को समझना उस सत्संगी के लिए बहुत ज़रूरी है जो निजधाम को प्राप्त करना चाहता है। न ही केवल इतना बल्कि उस सत्संगी के लिए भी इस सच्चाई को अपनाना और अगाध विश्वास रखना कि पहला गुरु कहीं गया नहीं है जो दुनियावी इच्छाओं की पूर्ति करना चाहता है। ऐसे बहुत से सत्संगी हैं जिनका पूरा विश्वास है कि फकीरमय मानव फकीर ही है। मैंने तो कई बार कहा है कि वो लोग भ्रम में हैं जो समझते हैं कि मैं I. C. Sharma हूँ। I. C. Sharma के संस्कार तो उसी दिन समाप्त हो गये थे जिस दिन उन्होंने हज़ारों अमेरिकन सत्संगियों की सभा में 1976 में घोषित किया था "I. C. Sharma आज से तुम्हारा नाम मानव दयाल है" जब से मैंने यह काम संभाला और अपने आपको फकीरमय लिखना शुरू किया तब से तो हालत ही बदल गई है। विशेष बात

यह है कि मैं जब कभी किसी पुराने सत्संगी के घर जाता हूँ और उनके कमरे में किसी विशेष सोफे या कुर्सी पर बैठता हूँ तो वह अक्सर यही कह देते हैं "परम दयाल जी जब हमारे घर आते थे तो इसी सोफे पर बैठते थे दूसरे पर नहीं।" मैं तो जो कुछ भी करता हूँ या कहता हूँ वह मेरी सहज अभिव्यक्ति होती है। यह बात सही है कि जिन लोगों का परम दयाल जी से अगाध प्यार था उनका मेरे साथ भी वैसा ही प्यार है। मिसाल के तौर पर सेठ दुर्गा-दास जी के दामाद चण्डीगढ़ के रहने वाले श्री त्रिलोक चन्द ठेकेदार और उनका परिवार 1982 से ही मेरे साथ जुड़ा हुआ है। श्री त्रिलोक चन्द जी की पत्नी चन्द्रा जिसका हवाला मैंने पहले दिया है; स्वर्गीय सेठ दुर्गादास जी की सुपुत्री है। वह बगदाद में पैदा हुई थी जब उनके पिता परम दयाल जी के साथ उसी शहर में थे। जब परम दयाल जी महाराज चण्डीगढ़ में सेठ त्रिलोक चन्द जी के यहाँ ठहरते थे तो श्रीमती चन्द्रा उनके बिस्तर पर एक ख़ास चादर बिछाया करती थी जो बगदाद से आई थी। मुझे इस बात का कुछ ज्ञान नहीं था। मैं 5 साल से चण्डीगढ़ में त्रिलोक चन्द जी के यहाँ ठहरता रहा हूँ। उसी कमरे और उसी बिस्तर पर सोता रहा हूँ जिस पर परम दयाल जी सोते रहे हैं। दो महीने पहले जब मैं चण्डीगढ़ में ठहरा हुआ था चन्द्रा मेरे पास आई और ज़ार-२ रोने लगी। मैंने उसका कारण पूछा तो चन्द्रा ने कहा, "महाराज जी! मैं परम दयाल जी के बिस्तर पर एक ख़ास चादर बिछाया करती थी जो बग़दाद से खरीदी गई थी। वह चादर मैंने आपके बिस्तर पर कभी नहीं बिछाई। आपके यहाँ आने से पहले परम दयाल जी महाराज मेरे स्वप्न में प्रकट हुए और उन्होंने कहा; "अरी बेवकूफ चन्द्रा पहले जब मैं तुम्हारे

घर आया करता था, तो तू बग़दाद वाली चादर मेरे बिस्तर पर बिछाया करती थी। अब पिछले पाँच साल से जब मैं तेरे घर आता हूँ तो तू ऐसा क्यों नहीं करती ?" चन्द्रा को इस बात की ग्लानि थी कि उससे भूल हो गई। मैंने उसे तसल्ली दी और कहा कि उसका कोई कसूर नहीं था। उसने जो कुछ किया अनजाने में किया। इस स्वप्न के बाद उसने मेरे बिस्तर पर बग़दादी चादर बिछानी शरू कर दी। यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि चन्द्रा का परम दयाल जी के परमतत्त्वाधार होने में अगाध विश्वास है और उसका वही सच्चा प्रेम मेरे में भी है। जिसका ऐसा विश्वास होता है उसे धीरे-२ यह ज्ञान हो जाता है कि सद्गुरु वक्त, वक्त से ऊपर होता है और वह कभी अपने भक्त को अधूरा नहीं छोड़ता।

मैं आपको हनमकुण्डा के सम्बन्ध में बता रहा था। जहाँ पर वसन्त सन्त सम्मेलन का सत्संग होता है। उसी स्थान पर दाता दयाल जी महाराज वर्षों तक रहे थे। इसलिए उस प्रांगण का वातावरण सत्संग के लिए बहुत ही उपयुक्त है। यही कारण है कि मेरे इस वर्ष के हनमकुण्डा के सत्संग बहुत ही गूढ़ और उसके साथ ही साथ सरल भी हैं। सत्संगों के दौरान में बहुत से सत्संगियों की समाधि लग गई। जब सत्संग समाप्त होते थे तो सत्संगी अलग में मेरे पास आकर कहते थे, "महाराज ! आप हमेशा हनमकुण्डा में सत्संगों की ऐसी अमृतधारा बहाते रहना। हमारी आपसे यह विनम्र विनती है।"

वास्तव में पिछले वर्षों के मुकाबले में इस बार खासकर हनमकुण्डा के सत्संगियों के हृदय में विशेष प्रेम उमड़ा। जब हजूर आनन्द राव जी समेत करीवन बीस हनमकुण्डा, हैदराबाद और निजामाबाद से आये हुए सत्संगी काजीपेट

के स्टेशन तक हमें विदाई देने के लिए आये तो स्टैशन पर गाड़ी आने तक एक खास भावपूर्ण माहौल बना रहा। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि छोटे, बड़े सत्संगी जिनमें कुमारी कल्पना और कुमारी ज्ञान भी शामिल थीं अपना खर्चा करके इतनी दूर वहाँ पहुँचे। मुझे एक क्षण के लिए भी उन्होंने अपने से अलग नहीं छोड़ा।

इन सत्संगियों में वारंगल के स्वामी, वारंगल के श्री इलाहिया और हनमकुण्डा के श्री स्वामी भी शामिल थे। ये लोग बहुत ही परिश्रमी और उत्साही हैं। यह सब हमारे डिब्बे के सामने खड़े रहे। उनके चेहरों से पता चल रहा था कि वह हमारी विदाई को अन्दर से महसूस कर रहे थे। पिछले पाँच वर्षों से आज तक दक्षिण के दौरे पर भावपूर्ण विदाई का वातावरण कभी नहीं हुआ था। गाड़ी के चलने से एक मिनट पहले जब मैं अभी अपने डिब्बे के दरवाजे पर ही खड़ा हुआ था निज़ामाबाद का नवयुवक ओम प्रकाश आशीर्वाद लेने के लिए आया। ज्यों ही उसने मेरे पाँव छुए वह घुट-२ कर और बिलख-२ कर रोने लगा। मैंने उसके सिर पर हाथ फेरा और उसे चुप कराने की कोशिश की। इतने में सभी सत्संगी स्त्री, पुरुष रोने लग पड़े और बच्चियों ने तो ओम प्रकाश की तरह ही बिलखना और सिसकियाँ भरना शुरू कर दिया। सिगनल हुआ, गाड़ी चल पड़ी, सभी सत्संगी स्त्री, पुरुष आँसू बहाने लगे और मैं दूर से देखता रहा, हाथ हिलाता रहा क्योंकि हज़ूर आनन्द राव जी के आँसू भी बहने शुरू हो गये थे। ऐ मेरे प्यारे दक्षिण के सत्संगियो! तुम धन्य हो, तुम मुझे वैसा ही प्यार करते हो जैसा परम दयाल जी से करते थे। यही नहीं बल्कि मेरे प्यारे इस सन्देश को पढ़ने वाले सत्संगियो तुम्हारा प्यार भी उमड़-उमड़ कर मेरी ओर

आता है और मुझमें दाखिल होकर हज़ारों गुणा ज़्यादा विशदता से इस लेखनी के द्वारा तुम्हारी ओर बह रहा है। तुम्हारा और मेरा, नहीं-नहीं, तुम्हारा, मेरा, परम दयाल जी का और दाता दयाल जी का गहरे प्रेम का रिश्ता है— अटूट है, रूहानी है, हमेशा रहने वाला है क्योंकि तुम और मैं सभी परमतत्त्व आधार दयाल पुरुष के अथाह प्रेम के सागर से निकले हैं, उसी प्रेम के विरह में तड़प रहे हैं, उसी को मनुष्यों के रूप में यहाँ पर मिलने आये हैं और उसी प्रीतम में तुम्हें मेरी तरह जीते-जी समा जाना है, उसी का रूप हो जाना है और सबको एक हो जाना है। मैं सहसूस कर रहा हूँ कि इन शब्दों को पढ़ते हुए तुम भी प्रेममय होकर, दाता दयालमय होकर, फकीरमय होकर और मानवमय होकर प्रसन्नता के बहते हुए आँसुओं का अनुभव कर रहे हो। धन्य हो तुम, धन्य है तुम्हारा प्रेम और धन्य हैं दाता दयाल जी महाराज, परम दयाल जी महाराज जिन्होंने मुझे, मेरी सुरत को निजधाम से खींचकर इस चोले में बुलाया है और सत्संगियों की प्रेममय सेवा का महान् कार्य देकर कृतार्थ किया है। मैं सभी सत्संगियों, सभी आचार्यों और सभी सहयोगियों का आभारी हूँ और सच्चे दिल से चाहता हूँ कि जिस शुभ उद्देश्य के लिए वे इस जन्म में परम दयाल जी के साथ और मेरे साथ जुड़ गये हैं, वह उद्देश्य, वह रूहानियत की ऊँची से ऊँची अवस्था उन्हें जल्दी से जल्दी मिल जाये। यही मेरी आकांक्षा है, यही मेरी सद्भावना है, यही मेरा हार्दिक दिली आशीर्वादरूपी उद्गार है, जो तुम्हें प्रेममय बनाकर और उभार कर छोड़ेगा।

अस्तु! मैं आपको बता रहा था कि हम 6 फरवरी को काजीपेट से रवाना हुए। 7, 8 और 9 फरबरी को हम इसी

रूहानियत के प्रेम से बंधे हुए बिलारी रहे, क्योंकि 7 और 8 फरवरी को मेरे प्यारे हरिवंश जी की दो बेटियों का विवाह अचानक ही निश्चित हो गया था। हरिवंश मेरी मैठाडोर के चालक हैं, ड्राइवर हैं—नहीं-नहीं वह कृष्ण हैं। वह 1983 में ही मेरे पास मैटाडोर के ड्राइवर बनकर नहीं आये थे उनका बिलारी में व्यापार है, वह मैकेनिक हैं और उन्होंने बिलारी में वर्कशाप भी खोली हुई है जिसमें उनके लड़के काम करते हैं। उन्होंने तो मैटाडोर के ड्राइवर बनने का इरादा इसलिए किया कि वह मेरे नज़दीक रहकर सत्संग सुनते-सुनते अपने जीवन के मक़सद को पा जायें। इन्हीं कारणों से मैंने दूसरे सारे प्रोग्रामों को बदल बिलारो जाना मंज़ूर किया था।

दौरे के सम्बन्ध में मैं आपको अगले मासिक सन्देश में सूचना दूंगा। पिछली बार मार्च के मासिक सन्देश में हम मानसिक तपस्या की व्याख्या कर रहे थे। मैंने आपको बताया था कि कटुवचन बोलने से अनर्थ हो जाता है। यह अनर्थ हर क्षेत्र में हो सकता है, घरों में हो सकता है, समाजों में हो सकता है, और राष्ट्र के इतिहासों में हो सकता है। कटुवचन क्रोध से जुड़े हुए होते हैं। क्रोध की अग्नि से सब कुछ जल जाता है, लेकिन कर्म नहीं जलते। क्रोध से कर्म बहुत जटिल बन जाते हैं और जीव को बुरी तरह से जकड़ लेते हैं। जब तक कटु वचन बोलने और क्रोध के कारण हिंसक व्यवहार को छोड़ा नहीं जाता, तब तक मन पवित्र नहीं हो सकता। जब तक मन पवित्र नहीं होता तब तक कोई भी जीव मानवता के रास्ते पर यानि कि राधास्वामी मत पर नहीं चल सकता और ना ही वह किसी दूसरे रूहानियत के रास्ते को अपना सकता है। यदि आप आज से संकल्प कर लें कि आप मन से किसी भी

व्यक्ति को बुरा नहीं समझेंगे, उसका अहित नहीं चाहेंगे तो आपका व्यक्तित्व वैसे ही बदल सकता है जैसे कि परशुराम का बदला था या राजर्षि विश्वामित्र का बदला था।

विश्वामित्र राजा थे। उन्होंने राजपाट छोड़कर संन्यास धारण किया था। उन्होंने बड़ी तपस्या की और उन्हें बहुत सिद्धिशक्तियाँ प्राप्त हुईं। विश्वामित्र ऋषि ने भगवान् राम को शस्त्र-विद्या सिखलाई। परमतत्त्व अवतार राम और शेष यानि कि काल के अवतार लक्ष्मण ने ऋषि विश्वामित्र की शारीरिक सेवा की। आप खुद ही अनुमान लगा सकते हैं कि जिस ऋषि के शरीर को भगवान् राम हर रात आराम देने के लिए दबाया करते थे और जिस गुरु की आज्ञा के बिना वह कुटिया से बाहर नहीं निकलते थे, वह ऋषि कितना महान् होगा—कितना धन्य होगा—कितना पूजनीय होगा। यह सब कुछ होते हुए भी वह राजर्षि थे, ब्रह्मर्षि नहीं थे।

किन्तु मैं आपको यहाँ पर यह बता देना चाहता हूँ कि गायत्री मन्त्र के रचने वाले महान् ऋषि विश्वामित्र में अहंकार का दोष था। वह अपने आपको ब्रह्मर्षि कहते थे और वसिष्ठ को मजबूर करते थे कि वह उन्हें ब्रह्मर्षि कहें। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ सच्चे सन्त थे, वह कभी क्रोध नहीं करते थे। उनमें किसी प्रकार का झूठा अहंकार नहीं था। इसलिए उन्होंने भगवान् राम को योगवासिष्ठ की शिक्षा देकर परमतत्त्व अवतार को निजधाम जाने का रास्ता दिखाया। इन कारणों से वह विश्वामित्र को राजर्षि ही कहा करते थे। ऋषि विश्वामित्र ने उनको मजबूर करने के लिए वसिष्ठ को बहुत हानि पहुँचाई। उनकी सम्पत्ति को नष्ट किया। उनके सभी पुत्रों की हत्या कर दी। इस पर भी ब्रह्मर्षि वसिष्ठ को क्रोध नहीं आया। वह सच्चे

दिल से राजर्षि विश्वामित्र से प्यार करते थे और करते रहे। किन्तु उन्होंने विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि कहकर सम्बोधित नहीं किया। विश्वामित्र उनके पड़ोसी थे एक रात को जब श्री वसिष्ठ ने अपनी पत्नी को खाना बनाने का आदेश दिया, तो ऋषिपत्नी ने कहा, "महाराज! घर में नमक नहीं है।" श्री वसिष्ठ ने उत्तर दिया, "ऋषि विश्वामित्र के घर से आज के लिए नमक मांग लो। कल उन्हें वापिस दे देंगे।" यह सुनकर ऋषिपत्नी ने चकित होकर कहा, महाराज आप क्या कह रहे हैं? ऋषि विश्वामित्र ने आपकी सम्पत्ति को नष्ट कर दिया। आपके परिवार को समाप्त कर दिया। वह अहंकारी हैं, क्रोधी हैं। आपके शत्रु हैं। क्या मैं शत्रु के यहाँ से नमक माँगने जाऊँ?" ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने बहुत प्रसन्न मुद्रा में अपनी पत्नी को कहा, "नहीं-२ तुम ग़लत हो। विश्वामित्र मेरे शत्रु नहीं हैं। वह तो मेरे परमप्रिय मित्र हैं। केवल मेरे ही नहीं, बल्कि वह तो विश्व के, प्राणिमात्र के, मित्र हैं। तभी तो उनका नाम विश्वामित्र है। जैसा नाम वैसा ही गुण होता है। उन्होंने उस गायत्री मन्त्र को रचा है जिससे भविष्य में असंख्य जीवों को मुक्ति मिल जायेगी। मैं उनका आदर करता हूँ। मैं उनसे अगाध प्रेम रखता हूँ। उनका मेरा मतभेद केवल असूल का मतभेद है। वह चाहते हैं कि मैं उन्हें ब्रह्मर्षि कहकर पुकारूँ। मैं समझता हूँ कि वह अभी राजर्षि ही हैं। अभी तक ब्रह्मर्षि नहीं बने। इसलिए मैं उन्हें शत्रु नहीं समझता। हमारा मतभेद हो सकता है किन्तु मनभेद और आत्मभेद नहीं है।

राजर्षि विश्वामित्र श्री वसिष्ठ के पीछे अन्धेरे में छुप कर खड़े थे। उन्होंने अपने हाथों में एक भारी पत्थर उठाया हुआ था। उनका इरादा था कि वह पत्थर से ब्रह्मर्षि

वसिष्ठ की हत्या करके उन्हें समाप्त कर दें, ताकि उनको राजर्षि कहने वाला व्यक्ति जिन्दा ही न रहे। जब उन्होंने श्री वसिष्ठ के ये वचन सुने उनका मन बदल गया। उनमें अगाध प्रेम उमड़ आया। वह श्री वसिष्ठ के ब्रह्मर्षिपने को पहचान गये और उनके चरणों में अपना सिर रख दिया। श्री वसिष्ठ ने बड़े प्रेम से उनके सिर पर हाथ फेरते हुए उनको ऊपर उठाया और उन्हें गले लगाते हुए कहा, "मेरे प्यारे ब्रह्मर्षि विश्वामित्र तुम धन्य हो।" ये शब्द सुनते ही ऋषि विश्वामित्र ने कहा,. "भगवन् आपने मुझे 'ब्रह्मर्षि' कहा ! यदि आपने यह शब्द पहले कहे होते तो मैं आपके परिवार को नष्ट करने का घोर पाप नहीं करता। आपने पहले ऐसा क्यों नहीं कहा ?" श्री वसिष्ठ ने उत्तर दिया "पहले तुम ब्रह्मर्षि नहीं थे। पहले तुमने कभी अपने अहंकार को नहीं छोड़ा था। आज तुमने सिर झुका दिया। तुम्हारा राजसिक अहंकार जाता रहा। तुम प्रेममय हो गये। इसलिए तुम अब ब्रह्मर्षि हो।"

मैं जानता हूँ कि मैंने आपको यह कथा कई सत्संगों में सुनाई है। इससे यह साबित होता है कि साधारण सत्संगी तो क्या ऋषि, महर्षि और सन्तों को भी राधास्वामी हालत पर पहुँचने के लिए सावधानी से बचन बोलने चाहिएँ। जैसे कि मैंने पहले कहा है कि मधुर भाषा का प्रयोग करना वाणी का सबसे ऊँचा तप है। मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि आज के मासिक सन्देश के सत्संग का विषय वाणी की तपस्या है, मन की नहीं। मन की तपस्या के सम्बन्ध में बहुत कुछ कह चुके हैं। वाणी, मन और शरीर के बीच में रहती है। इसलिए मधुर वाणी मन को पवित्र करती है और शारीरिक कर्म को शुभ बनाती है। जिस सत्संगी का वाणी पर नियन्त्रण है, उसका मन पर भी

नियन्त्रण होगा और उसके कर्म भी किसी जीव को हानि नहीं पहुँचायेंगे। वह राधास्वामी अवस्था का अधिकारी हो जायेगा। इन शब्दों के साथ मैं आपको इस मास की शुभ-कामनाएं भेजता हूँ और चाहता हूँ कि आप शरीर से स्वस्थ, मन से सुखी, आत्मा से आनन्दमय और सुरत से परमशान्त अवस्था को प्राप्त हों।

सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय

मानव

श्रद्धांजलि

आज वैसाखी के रोज मुझे अपना कलाम पेश करने के लिए हजूर मानव दयाल जी का हुक्म हुआ। इससे पहले कि मैं एक रूहानी गज़ल पेश करूँ मैं श्रीमती सरला, पत्नी श्री परदेसी जी प्रधान ट्रस्ट को तीन कतात (पद्यों) में श्रद्धांजलि पेश कर रहा हूँ। माह मार्च के मासिक सत्संग पर जब मैंने सुना कि परदेसी साहिब की पत्नी सरला की अचानक मौत हो गई है तो आँखों में आँसू भर आये और मैं अपनी घरवाली को रुन्धे गले से यह दुःखदायी खबर बड़ी मुश्किल से सुना पाया। और मुझे जहाँ तक मालूम हुआ कि श्रीमती सरला की लाश घर में पड़ी थी, लोग रो रहे थे मगर परदेसी साहिब की आँख तक नहीं भीगी।

परदेसी साहिब उम्र में मुझसे बहुत छोटे मेरे बच्चों के बराबर के हैं और फकीर साहिब के सम्पर्क में भी शायद कुछ देर बाद आये और उनकी सोहबत से मुझे पीछे छोड़कर कोसों दूर आगे निकल गये या यूँ कह लीजिये कि अगर मैं

जमीन पर हूँ तो वह आसमान पर हैं। इस फर्क के मुताबिक जिस सतह पर मैं हूँ उसी सतह पर से बीबी सरला जी को श्रद्धांजलि पेश कर रहा हूँ। वह इस तरह से है :—

ज़माने भर की मस्तूरात की सरतान थी सरला।
वो गौहर थी, जवाहर थी, मणि पुखराज थी सरला॥
वो बच्चों की प्यारी मां, पति के प्यार की प्यासी।
वो परदेसी के मन की मलिका ए बेताज थी सरला॥

वो चलदी छोड़कर संसार को सरला मेरी बेटी।
भुला बच्चों, पति के प्यार को सरला मेरी बेटी॥
अभी तो गृहस्थ के सारे ही कारज ही अधूरे हैं।
ज़रूरत थी अभी परिवार को सरला मेरी बेटी॥

अभी कल ही तो परदेसी के सर सेहरे सजाये थे।
अभी कल ही तुम्हें दुलहन बनाकर घर में लाये थे॥
अधूरे छोड़कर अरमान बच्चों के गई सरला।
अभी तो दिन पहनने, खेलने, पढ़ने के आये थे॥

इन शब्दों के साथ मैं परदेसी जी के साथ इज़हारे हमदर्दी और सरला जी की आत्मा की शान्ति के लिए मालिक से दुआ गो हूँ।

दरवेश जालन्धरी
14-4-87

बिछोड़ा

जैसा कि माह मार्च के माहवारी सत्संग पर मैंने अर्ज़ किया था कि हज़ूर परम दयाल जी ने स्वप्न गनूदगी (अर्धनिद्रावस्था) या समाधि में कह लीजिये दर्शन देकर फरमाया कि मैं तुमको यह तरहमिसरा देता हूँ इस पर कविता लिखकर बैसाखी (1987) के सत्संग पर पेश करना। तरहमिसरा यूं था :—

न था बाहर कभी पहले न अब बाहर से आया हूँ।
उतर कर देख दिल में तेरी रग-रग में समाया हूँ।
यह मानव दयाल नारायण है ज़ाहिर पीर की सूरत।
तेरी खातिर ही भारत में मैं अमरीका से लाया हूँ।

इस पर मैंने सात शेर कहे हैं जो पेश कर रहा हूँ :—

विरह की चोट से घायल हूँ मैं फुरकत का सताया हूँ।
यह मेरा दिल नहीं, जलता हुआ अंगार लाया हूँ॥
कहीं संसार की इस भीड़ में मैं फिर न खो जाऊँ।
न आगे का मिले रस्ता न पीछे को मैं मुड़ पाऊँ॥
हज़ारों साल तक चक्कर पे चक्कर मार आया हूँ। (विरह०)

मैं आ निकला तेरे दर पर भली तकदीर मेरी है।
तुम्हारी खाके पा हर मर्ज़ की अक्सीर मेरी है॥
शफ़ा दीजिये मसीहा ज़ख्मों बीमार आया हूँ। (विरह०)

अकीदत मन्द गुलहाये अकीदत पेश करते हैं।
तुम्हारे दर पर सजदे आन कर दरवेश करते हैं॥
मेहर मुझ पर भी हो जाये मैं मंज़िल मार आया हूँ। (विरह०)

जनाब पीर अब कदमों से मुझको दूर न करना ।
यहीं किस्मत में हो जीना यहीं तक़दीर में मरना ।।
चौरासी लाख चक्कर काट कर इस बार आया हूँ । (विरह०)
सुना है दर्दे दिल का मुझसा चारागर नहीं कोई ।
सुकूं दिल को जो बख्शे तुझसा वो माहिर नहीं कोई ।।
जुबाने खल्क से सुनकर दीवाना वार आया हूँ । (विरह०)
बनें मेरे लिए तुम, मैं तेरी खातिर बन आया हूँ ।।
बने तुम देवता मेरे पुजारी बन के आया हूँ ।
तेरी खिदमत बजाने को मैं अर्शों से बुलाया हूँ ।। (विरह०)
तुम्हारा छोड़ दरवाजा बता किस दर पर जाता मैं ।
ये किस्सा दर्दे तूलानी किसे जाकर सुनाता मैं ।।
दिखाने जख्मे-दिल अपना तुम्हारे द्वार आया हूँ । (विरह०)
प्यासा हूँ छलकता प्यार का इक जाम मिल जाये ।
सुकूं दिल को मिले जान को मेरी आराम मिल जाये ।।
मैं दुनिया के झमेलों से बदिल बेजार आया हूँ । (विरह०)

—दरवेश जालन्धरी

मानव मन्दिर के सभी पाठकों से निवेदन

"मानव मन्दिर" पत्रिका दिन-प्रतिदिन हरदिल-अजीज होती जा रही है । इसके पढ़ने वालों की संख्या नौ हजार (9000) के लगभग पहुँच चुकी है । मालिके कुल पूर्ण धनी परमसन्त परम दयाल पं० फकीर चन्द जी महाराज ने इस पत्रिका को चला कर जीवों का बड़ा भारी उपकार किया है । मैं उनकी आज्ञा के अनुसार इस पत्रिका को लगातार छपवा रहा हूँ और सभी सत्संगियों को, परम दयाल जी

महाराज को इच्छा के मुताबिक यह पत्रिका नि:शुल्क भेजी जाती है। महंगाई और इस पत्रिका की बढ़ती हुई मांग के कारण इसका सालाना खर्च 2 लाख रुपये से अधिक हो रहा है।

परम दयाल जी इस बारे में अपील किया करते थे कि जो लोग यह महसूस करते हैं कि यह पत्रिका सबके लिए लाभदायक है वे अपनी शक्ति के अनुसार आर्थिक सहायता दे सकते हैं।

मैं भी परम दयाल जी महाराज के पदचिन्हों पर चलते हुए आप सब से अनुरोध करता हूँ कि आप यथाशक्ति और अपनी दिली इच्छा के अनुसार इस शुभ कार्य में हमारा हाथ बटायें। मैं फिर यही कहूँगा कि आप अपने घर के खर्च और आवश्यकताओं पर खर्च में से काट कर अनुदान न भेजें। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि आप सब इस ज्ञान गंगामय पत्रिका से लाभ उठायें ताकि आपका लोक और परलोक दोनों बन जायें। मैं आप सबको सद्भावना, प्रेम और दिली आशीर्वाद देता हूँ।

आपका फकीरमय
मानव

नोट :—आर्थिक सहायता हो सके तो ड्राफ्ट या चैक के जरिये भेजें। मनीआर्डर से भी भेज सकते हैं। यह पैसा भेजते समय एक नोट अवश्य लिखें कि यह पैसा केवल मानव मन्दिर पत्रिका के लिए ही भेजा जा रहा है।

———